प्राणायाम
मुद्रा, ध्यान
एवं
संक्षिप्त
पारिभाषिक
शब्दकोश

संकलन

स्वामी निरंजन

प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान
एवं संक्षिप्त पारिभाषिक शब्दकोश

संकलन : स्वामी निरंजन

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
पंचम मुद्रण : **शिवरात्रि ,२०१२**
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर – २ (उड़िसा) फोन : *9437006566*
प्रच्छद प्रस्तुति : **विभु**
मूल्य : ₹ 100/-

प्रयोजन

मुमुक्षु जनों को आत्म ज्ञान कराने हेतु अनेकों ऋषि, महर्षि एवं आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से कई धर्म शास्त्रों एवं वेदान्त प्रक्रिया ग्रन्थों की रचना की है । किन्तु उन ग्रन्थों में लिखे अविद्या, माया, अधिष्ठान, अध्यस्त, उपाधि, विशेषण, परिणाम, विवर्त, चिदाभास, चिदाकाश, जड़-चेतन, दृश्य-द्रष्टा, स्वयंप्रकाश-परप्रकाश, साक्षी आदि पारिभाषिक कठिन शब्दों का अर्थ उन्हें स्पष्ट न होने के कारण पाठक उन जीव उद्धारक उपनिषदों, गीता, भागवत, रामायणादि ज्ञान सागर के किनारे जाकर भी, उनमें भरे दिव्य ज्ञानामृत लाभ से वंचित् रह उनके कंठ प्यासे ही रह जाते हैं। अतः उनकी असमर्थता को देख मेरे मन में एक संक्षिप्त वेदान्त शब्दकोष संकलन करने का भाव जाग्रत हुआ । इसमें जिज्ञासुओं के बोधार्थ प्राय उन सभी वेदान्त ज्ञान में आवश्यक गूढ़ परिभाषाओं एवं कोष्टकों को स्पष्ट किया गया है । साथ ही नाना प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों के निवारणार्थ प्राणायाम, मुद्राज्ञान एवं ध्यानादि साधन विधि का भी सुन्दर संकलन किया गया है । आशा है वेदान्त पाठकों के लिए यह त्रिवेणी संगम रूप चतुर्थ संस्करण शारीरिक स्वस्थता, मानसिक शान्ति एवं आत्मलाभ का हेतु होगा ।

– स्वामी निरंजन

सूचीपत्र

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

प्रतिबन्ध 79

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

परिभाषा अनुक्रम

कोष्टक अनुक्रम

मेरी भावना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ।।

आत्म ज्ञान प्राप्त कर सभी जीव सुखी रहे, मांस, मछली, सराब, सिगारेट, तम्बाखु आदि तमोगुणी पदार्थों का सेवन कर अपने एवं अन्य जीवों के रोग का कारण न बने । सात्विक आहार द्वारा सभी जीव पूर्ण स्वस्थ रहें। किसी के प्रति ऊँच-नीच जाति भेद न करें, बल्कि सभी जीवों को परमात्म स्वरूप जाने । मन, वचन, कर्म से किसी को न सतावें । विवाह स्नेह सम्बन्ध के लिये परस्पर दहेज कभी न लें । छल कपट, निन्दा-गाली, चोरी-हत्या न करें । किसी के अश्रु बहाने में हम निमित्त न बने । किसी के धन को देख मन में लोभ न लावें । किसी की उन्नती देख ईर्ष्या नकरें । किसी के सुन्दर रूप को देख मन में काम विकार न लावें । हमें जो वचन अप्रिय एवं व्यवहार दुःख रूप लगे, वैसी कटु वाणी एवं दुरव्यवहार बदले की भावना से हम किसी के प्रति कभी न करें । जैसी बाणी एवं व्यवहार हमें अपने लिये अच्छा, सुखरूप लगे, वैसा ही मधुर, प्रिय, वचन, दया एवं क्षमा भाव रूप व्यवहार हम अन्य के प्रति करें ।

उपरोक्त भावना रखने से अन्तःकरण जैसा शीघ्र निर्मल हो जाता है, वैसी निर्मलता बड़े-बड़े यज्ञ, तप, दान, तीर्थ, मन्दिर, कीर्तन, भजन, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास आदि साधनों द्वारा भी नहीं हो सकता । उपरोक्त मनोभाव द्वरा मन की मलिनता पाप वासना सहज ही तत्काल दूर हो जाती है ।

आप तन व धन से दूसरों की सेवा करें तो बहुत ही अच्छा है । यदि तन, धन से असमर्थ हैं तो मन से ही ओरों के प्रति सुख

पहुँचाने की भावना करे तो बिना कुछ किये ही आप धन्य हो जाते हैं । यदि आपका मन किसी को दुःखी करने, हानि पहुँचाने, निंदा करने, चोरी करने, दहेज लेने, जलाने, मांस, मछली, अंडा खाने, शराब, सिगरेट, तम्बाखु, बीड़ी आदि सेवन करने का हो तो आप बहुत अधमता को प्राप्त हो गये । आपकी बहुत बड़ी हानि हो गई ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

हाड़ बड़ा हरि भजन कर, दाम बड़ा कछुदे ।
बुद्धि बड़ी उपकार कर, जीवन का फल ये ।।

मनुष्य जीवन में सद्गुरु से ज्ञान विशेष ग्रहण कर अपना एवं दुसरों का कल्याण करें । धनार्जन किया है तो कमसे कम उसका दशवां भाग अन्य जीवों के उपकारार्थ त्यागकरें । अपना रक्षा, अपना जीवन निर्वाह, अपने सन्तान, परिवार की रक्षा तो पशु भी करलेते हैं । हम मनुष्य हैं तो पशता से आगे बढ़े एवं प्रतिदिन कम से कम एक काम तो निःस्वार्थ भाव से दुसरों के हितार्थ कर हर रात्रि विश्राम करें । करके देखे कितनी शान्ति उस दिन प्राप्त होगी ।

नाड़ी शोधन

जैसे तपाने से स्वर्ण शुद्ध होता है, उसी प्रकार प्राणायम से शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण सभी ठीक हो जाते हैं ।

प्रथम कुछ समय पद्मासन में बैठकर दोनों घुटनों पर अपने हाथों को रखें एवं सामान्य चल रही श्वाँसों को देखते रहें । पश्चात् दाँये हाथ के अंगुठे से नासिका के दाँये छिद्र को बन्द कर बाँये नासिका छिद्र से 11 बार लम्बी गहरी श्वाँस ले एवं छोड़े । अन्त में श्वाँस बाहर रोक दें, फिर अन्दर श्वाँस लेकर रोकदें ।

अब बाँये नासिका छिद्र को दाहिने हाथ की मध्यमा एवं अनामिका अंगुली के द्वारा बन्द करके श्वाँस को दाँये नासिका छिद्र से अंगुठा हटाकर निकाल दे एवं 11 लम्बी गहरी श्वाँस ग्रहण–त्याग करें । फिर बाहर रोक दे, न रुक सके तब अन्दर लेकर रोकले, जब न रुके तब बाँयें तरफ से निकाल दें । **ध्यान रहे उतने ही समय श्वाँस भीतर–बाहर रोकें जिससे कष्ट न हो ।**

अब बाँयें तरफ से ही खींच बाँये नासिका छिद्र को बन्दकर, दाँये तरफ से निकाल दें । दाँये तरफ से खींच दाँयें को बन्दकर बाँयें तरफ से निकाल दें इस प्रकार बदल–बदल कर 11 से 21 बार तक करें ।

अन्त में बाँये तरफ से निकालकर बाहर रोकें । फिर अन्दर लेकर अन्दर रोकें । फिर बाँया स्वर बंद कर दाँयें तरफ से निकाल बाहर रोकें, फिर भीतर लेकर रोकें ।

अब दोनों स्वर से लम्बी गहरी श्वाँस 11 से 21 बार लें व छोड़ें ।

अन्त में यथा शक्ति बाहर रोकें, फिर अन्दर लेकर रोकें ।

शीघ्रतासे अब नाभी को भीतर की ओर सिकोड़ते हुए प्रश्वाँस छोड़े व नाभी को ढीला करते हुए पेट को भीतर खींचने की क्रिया कई बार करे।

ब्लड प्रेसर, दमा, छींक, जुकाम, हृदय रोग, एन्जाइना, सायनस रोगी धीमे धीमे **10** से **20** बार प्रति मिनट की गति से यह क्रिया करना उचित होगा । स्वस्थ व्यक्ति **30, 40, 50** बार भी कर सकता है ।

मोटापा, डायबीटीज व एसीडीटी के रोगी उपरोक्त क्रिया तीव्र गति से करें अर्थात् उन्हें **30** से **60** बार प्रति मिनिट की गति से करना चाहिये । अन्तमें दोनों स्वरों से बाहर फेंक यथाशक्ति रोकें फिर अन्दर खींच अन्दर रोक ले ।

लाभ : अंग प्रत्यंग क्रियाशील, विजातीय द्रव्य जलेंगे, सजातीय पदार्थ भीतर प्रवेश करेंगे । रक्त शोधन, नाड़ी शोधन समस्त शरीर में फुर्ती, रक्त कोलोष्ट्रल, शकर, कैलशियम, युरिक् ऐसिड अधिक मात्रा में बाहर निकलने लगेगा । पेट नरम होगा । चर्बी घटेगी ।

अब मन में ॐ का जाप करते हुए दोनों स्वरों से प्राण वायु को बाहर फेंककर यथा शक्ति रोकें, मन नासिकाग्र पर स्थिर करें । घबराहट होने पर श्वाँस लें, किन्तु पुनः साथ-साथ बाहर करें । इस तरह **11** बार करे ।

लाभ :- उच्च रक्तचाप (**High B.P.**) नियन्त्रण होगा, बुद्धि शक्ति तीव्र, मन, इन्द्रिय अन्र्तमुख व प्राण उर्ध्व होता है ।

अब श्वाँस को यथा शक्ति भीतर रोके, मन को फेंफड़े (lungs) पर एकाग्र करे, ॐ का जाप सतत करते रहे । घबराहट होने पर धीरे-धीरे बाहर निकाले व बाहर न रोक, साथ-साथ भीतर लेकर रोकले । इस तरह **3** से **11** वार करें ।

लाभः निम्न रक्त चाप (**Low B.P.**) नियन्त्रण होगा, खांसी, टी.बी. एन्जाइना, नाड़ी कमजोरी, कब्ज, मिर्गी, माइग्रेन, दमा में लाभ होगा ।

अब प्रश्वाँस को बाहर फेंककर बाहर ही रोके एवं पेट को पीठ की तरफ पूरा खींचकर चिपका रखे, मनको भीतर आंतो पर लगावे । यथाशक्ति रोकने के बाद पेट ढीलाकर फिर श्वाँस को धीरे-धीरे अन्दर ले । एक दम तेजी से श्वाँस भीतर न आने दे न मुंहसे श्वाँस अन्दर आने दे । इस प्रकार उसे **5** बार करें ।

लाभः मासिक धर्म की अधिकता, प्रदर, बच्चेदानी का नीचे आजाना, प्रोस्टेट की सूजन, हार्निया, अपेन्डिक्स, डिसेन्ट्री, डायरिया, कोलायटिस, कब्ज आदि ठीक होगें ।

अब श्वाँस को अन्दर यथा शक्ति भरकर रोकें एवं रीढ़ की हड्डी कन्धों को ऊपर उठाते हुए गर्दन को छाती से लगा दे । मन को कंठ पर एकाग्र करें । जब चेहरे पर तनाव आवे तो सिर सीधा कर धीरे - धीरे श्वाँस बाहर निकाल दे । इस तरह उसे **5** बार करें ।

लाभः मोटापा, थायराइड, टान्सिल की सूजन, गलाबैठना, खांसी, दमा, आँख कान के रोग, मिर्गी, नाड़ीदोष, आदि दूर हो जाते हैं ।

अब श्वाँस अन्दर भर कर रोकले अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी रखे एवं गर्दन पीछे पीछे की ओर जितना झुका सके झुकादे । मन लघु मस्तिष्क पर एकाग्र करे, यथा शक्ति रोके तथा फिर प्रथम अवस्था जैसे सर गर्दन सीधा कर श्वाँस धीरे - धीरे बाहर निकाले । **3** से **5** बार इसे करे ।

लाभ : सायटिका, स्पाण्डिलिसिस, सरवाइकल, स्लिपडिस्क, माइग्रेन, छींक, सायनस, कम्पन, लकवा, मृगी, जुकाम आदि रोग दूर हो जाते हैं ।

अब अपने गर्दन को बाँये कन्धे पर कान छूने तक झुकाये । श्वाँस लेते हुए सीधे हो जावे फिर श्वाँस छोड़ते हुए दाँये कन्धे तरफ गर्दन झुकाये कष्ट हो तो लोट जावे । इस प्रकार चार बार करे ।

अब गर्दन को आगे झुकावे व अपनी ठोड़ी को बाँये कन्धे से छूते हुए दाँये कन्धे तक ले जावे, फिर दाँये से बाँये तरफ इस तरह चार बार करे ।

अब गर्दन को बाँये कन्धे से पीछे की तरफ ले जाकर दाँये कन्धे की तरफ ले आवे एवं दाँये कन्धे के बाहर की ओर छाती से ठोड़ी लगते हुए बाँये तरफ ले जावे यह एक बार हुआ । इस तरह दो बार करे । अब दो बार इसी तरह दाँये कन्धे के पीछे से बाँये कन्धे की तरफ ले जाते हुए बाँये कन्धे के आगे होते हुए दाँये कन्धेके तरफ ठोड़ी छाती से छूते हुए करे ।

अब पीठ के बल लेट जावे एवं नासिका से भीतर बाहर होनेवाले श्वाँसों को देखते रहे । मन को श्वाँस के साथ जोड़े रखे । जब श्वाँस भीतर आवे तब बिना जिह्वा के मानसिक रूप से 'सो' का चिन्तन करे एवं श्वाँस बाहर जाते समय 'हम्' का चिन्तन करे । फिर सो + हम का मनोयोग (मन से) करे तो सोऽहम् एक महावाक्य निर्मित हो जावेगा । फिर उसके अर्थ का चिन्तन करे कि वह परमात्मा मैं हूँ, यह जन्म-मृत्यु धर्मा विकारी शरीर मैं नहीं हूँ ।

प्राणायाम

प्राण का आयाम अर्थात् विस्तार को प्राणायाम कहते हैं । प्राणायाम से महान कोई तप नहीं है । उससे मल दूर होता है और ज्ञानोदय होता है । जिस प्रकार अग्नि में स्वर्ण आदि धातु गलाने से उनका मैल दूर होता है उसी प्रकार प्राणायाम करने से शरीर, इन्द्रियां और मन का मैल दूर होता है । जिस प्रकार शरीर शुद्धि के लिये स्नान करने की जरुरत होती है, इसी प्रकार मन की शुद्धि के लिये प्राणायाम की आवश्यकता रहती है ।

प्राणायाम से शरीर स्वस्थ, निरोग रहता है और अतिरिक्त मेद, चर्बी, मांस, मोटापा कम हो जाता है ।

प्राणायाम से दीर्घआयू, स्मरण शक्ति बढती है और मानसिक रोग दूर होते हैं । शारीरिक सुस्ती दूर होती है ।

प्राणायाम से पेट यकृत, मूत्राशय, छोटी - बडी दोनों आंते और पाचन तंत्र भली-भाँति प्रभावित होते हैं और कार्यक्षम बनते हैं । जठराग्नि प्रदीप्त होती है ।

प्राणायाम से अन्तर्नाद 'सोऽहम्' सुनाई पडता है और मन एकाग्र होता है । ज्ञान तंत्र को शक्ति मिलती है । आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत होती है । ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ होता है । यह आत्मानन्द, आत्मप्रकाश और मानसिक शान्ति प्रदान करता है ।

प्राणायाम प्रातः काल एवं सन्ध्या काल में एकान्त, खुली हवादार स्थान में ठीक होता है । आसन एवं प्राणायाम के पहले मल त्याग एवं स्नान कर सके तो ज्यादा लाभप्रदायक होगा ।

नाड़ी शोधन के बाद ही प्राणायाम की साधना करें । इसके लिए पहले आसनों का अभ्यास करें । आसन प्रणायाम के आधेघंटे बाद ही स्वल्पाहार लें ।

प्राणायाम निश्चित समय पर, निश्चित स्थान पर, खाली पेट करना चाहिये । अभ्यास के अन्त में एक छोटा प्याला दूध का सेवन किया जा सकता है ।

प्राणायाम के बाद शरीर व मन में प्रसन्नता, ताजगी, स्फुर्ति उत्पन्न होनी चाहिये । यदि प्राणायाम के बाद थकावट अनुभव में आवे तो उसकी मात्रा अपने शक्ति अनुसार कम करलें ।

स्नान के बाद ही प्राणायाम करें तो ज्यादा श्रेयस्कर होगा । प्राणायाम के आधे घन्टे बाद स्नान कर सकते हैं । प्राणायाम के तुरन्त बाद स्नान न करें ।

श्वाँस हमेशा बहुत धीमे से लें और छोड़े । ऐसे करने से मन शीघ्र स्थिर और शान्त हो जाता है ।

नये साधकों को प्रथम कुछ दिन पूरक श्वाँस भीतर लेना तथा रेचक श्वाँस बाहर करने का ही अभ्यास करना चाहिये । पूरक व रेचक में क्रमशः एक और दो मात्राओं का हिसाब रखें । अर्थात् पूरक में जितना समय लगता है उससे दुगना समय रेचक में लगना चाहिये ।

कुंभक भीतर या बाहर श्वाँस रोकने को कहते हैं । प्रथम सप्ताह में केवल दस सेकण्ड, दुसरे सप्ताह में पन्द्रह सेकण्ड, तीसरे सप्ताह में बीस सेकण्ड तथा चौथे सप्ताह में तीस सेकण्ड तक श्वाँस रोकने का अभ्यास करें । इस प्रकार क्रमशः बढाते हुए अपनी पूरी शक्ति के अनुसार श्वाँस रोकने का अभ्यास करें ।

पूरक, कुंभक और रेचक का अभ्यास इस प्रकार धीरे धीरे करना चाहिये कि किसी भी अवस्था में श्वाँस की घुटन का अनुभव एवं कष्ट न हो ।

पूरक, कुंभक और रेचक के लिये 1:4:2 का अनुपात रखें । अर्थात् एक बार ॐ नमः शिवाय बोलने के समय मे श्वँास भर ले । फिर मन ही मन चार बार 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण तक श्वँास रोके रहें और अन्त में दो बार 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण होने तक श्वँास को बाहर निकालते रहें । { **1:4:2** }

दूसरे सप्ताह **2:8:4** के अनुपात से करें, तीसरे सप्ताह **3:12:6** के अनुपात से करें । और इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाते हुए **16:64:32** के अनुपात तक पहुँचें ।

बाँये हाथ की अंगुली द्वारा ॐ नमः शिवाय जाप की गणना करने में लगावें । अपने मन के अनुरूप भी जाप का चुनाव किया जा सकता है ।

जब ब्लडप्रेसर हो तब कुंभक न करे । केवल पूरक और रेचक ही करें । ब्लडप्रेसर सामान्य हो जाने पर धीरे-धीरे कुम्भक का अभ्यास करे ।

मोटापा घटाने हेतु, पसीना बहाने हेतु लोहार की धोकनी की तरह तेजी से श्वँास भरे एवं छोड़ें । इससे बहुत पसीना बहेगा, केलोरी नष्ट होगी, शरीर हल्का होगा, नींद अच्छी आवेगी ।

श्वँास अन्दर लेना	पूरक कहलाता है ।
श्वँास बाहर छोड़ना	रेचक कहलाता है ।
श्वँास रोकना	कुंभक कहलाता है ।

बाँये नासिका छिद्र को इड़ा या चन्द्र नाड़ी कहते हैं ।

दाँये नासिका छिद्र को पिगंला नाड़ी या सूर्य नाड़ी कहते हैं ।

दोनो स्वर से समान वायु बहने को सुषुम्णा नाड़ी या ब्रह्म नाड़ी या मध्यनाड़ी कहते हैं ।

श्वँास लेकर उसे अन्दर रोकने की क्रिया को 'आन्तरिक कुंभक' और श्वँास बाहर कर रोकने की क्रिया को 'बाह्य कुंभक' कहा जाता है ।

इड़ा नाड़ी को चन्द्रनाड़ी भी कहते हैं । यह शीतल और तमः प्रधान है । यह नाड़ी व्यक्ति के विचारों का नियन्त्रण करती है ।

पिंगला नाड़ी को सूर्य नाड़ी भी कहा जाता है । वह उष्ण और रज प्रधान है । यह नाड़ी व्यक्ति की प्राणशक्ति का नियन्त्रण करती है ।

सुषुम्णा नाड़ी उष्ण है ना शीतल, किन्तु दोनों के बीच सन्तुलन बनाए रखती हैं । यह नाड़ी से प्रकाश तथा ज्ञान की प्राप्ति में सहायक होती है । यह नाड़ी साधक को उसकी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता करती है ।

प्राणायाम के जिज्ञासु को किसी अनुभव योगाचार्य से इसकी शिक्षा लेकर करना ही श्रेयस्कर होगा ।

प्राणीयों के श्वाँसों का क्रम

प्राणी का नाम	**१ मिनट् में श्वाँस संख्या**	**प्राणी का नाम**	**१ मिनट् में श्वाँस संख्या**
कबुतर	**45**	बन्दर	**30**
बतख	**22**	सूअर	**36**
कुत्ता	**28**	वकरी	**24**
घोड़ा	**26**	सर्प	**19**
बिल्ली	**24**	मनुष्य	**15**
हाथी	**22**	कछुवा	**5**
चिड़िया	**30**		

उपरोक्त प्राणीयों में जो जितनी ज्यादा श्वाँस लेता है वह उसीके अनुसार आयु भी पूर्ण करता है । कछुआ चार सौ वर्ष तक की आयु वाले होते हैं । योगाभ्यासी पुरुष में श्वाँस **8** तथा प्राणायाम व ध्यान के सय **4** तक हो जाती है । इसी कारण योगी पुरुष **400-500** वर्ष तक इस शरीर में रहते पाये जाते हैं । तोतापुरीजी की दीर्घ आयु का भी यही रहस्य सहै ।

प्राणायाम में उपयोगी बन्ध एवं लाभ

जलन्धर बन्ध : बज्रासन, पद्मादन, सिद्धासन में से किसी आसन को चुनले । दोनों हाथ घुटने पर थोड़ी को कंठकूप में लगादे, छाती थोड़ा ओग ।

लाभ (विशुद्धि चक्र की जाग्रती) : कण्ठ, गले, थाईराड़, टान्सिल् आदि रोग दूर होते हैं । कण्ठ मधूर, सूरीला होता है । प्राण सुषुम्णा से प्रवेश होता है ।

उड्ड़ीयान बन्ध : खड़े होकर दोनों घुटने पर दोनों हाथ रखें,श्वाँस बाहर कर पेट ढीलाकर आगेपिछे करें, साथ जलन्धर बन्ध भी लगावे । बैठकर भी कर सकते हैं ।

लाभ : पेट सम्बन्धी समस्त रोग दूर करता है । मणिपूर का शेधन प्राणों को जाग्रत करता है ।

मूलबन्ध : गुदा एवं मुत्र इन्द्रिय भाग को नाभि की तरफ ऊपर खीचे । श्वाँस बाहर रोकें, जलन्धर बन्ध के साथ भी कर सकते हैं ।

लाभ (मूलाधार चक्र की जाग्रति) :कोष्ठ बद्धता, बवासीर को दूर करता है । जठराग्नि को तेज करता है । वीर्य उध्वरिता बनाता है, स्वप्नदोष दूर करता है । कुण्डलिनी जाग्रत में अत्यन्त सहायक है ।

महाबन्ध : तीनों बन्ध एक साथ लगाना महाबन्ध कहलाता है ।

लाभ :इसके द्वारा तीनों बन्ध के लाभ प्राप्त हो जाता है क्योंकि इसमें तीनों बन्ध एक साथ लगाये जाते हैं । इड़ा, पिगंला, सुषुम्णा का संगम होता है ।

प्राणायाम एवं लाभ

भस्त्रिका प्राणायाम : आराम दायक आसन में बैठ दोनों नाक छिद्रों से पवन बाहर फेंकना तथा दोनों छिद्रों से बलपूर्वक श्वाँस भीतर लेना पेट तक श्वाँस नहीं भरे । केवल छाति तक भरे । ३–५ मिनट् उच्च रक्तचाप, कमजोर ह्रदय, फेफड़े वाले धीमी गति से, स्वस्थ वक्ति तीव्र गति से करे ।

लाभ : रक्तचाप उच्च व ह्रदय रोग वाले तीव्र गति से न करे । ग्रीष्म में कम करें । सर्दि, जुकाम, एलर्जी, श्वाँस रोग, दमा, पुराना नजला, साइनस्, थायराइड़, टान्सिल्, रक्त शुद्ध विजातीय द्रव्य दूर होते हैं । मन स्थिर, कुण्डलिनी में सहायक होते हैं ।

कपाल भाति प्राणायाम : इस प्राणायाम से केवल श्वाँस को शीघ्रता से बाहर ही फेंके अन्दर लेने की चेष्टा न करे ५ से १० मिनट्, थक जाय तो मध्य मे रेष्ट करले । शक्ति पूर्व पेट से श्वाँस को बाहर फेंके । मन में विचारे कि मेरे रोग बाहर जा रहे हैं ।

लाभ : समस्त कफ रोग, दमा, श्वाँस, एलर्जी, साइनस् रोग, ह्रदय, फेफड़े एवं मस्तिष्क के रोग मोटापा, मधुमेह, गैस, कब्ज, किड़नी व प्रोस्टेट कबज, ब्लाकोज खुलते हैं । ४ से ८ के.जि.वजन कम होता है । सभि चक्रों का शोधन, यकृत, प्लीहा । मन स्थिर, शान्त, प्रसन्न, डिप्रेसन दूर, मुख पर तेज, आभा, कान्ति, सौन्दर्य बढ़ाता है ।

बाह्य प्राणायाम : महाबन्ध लगाकर श्वाँस को बाहर रोक कर रखे, गर्दन, कंठ में ठोड़ी लगा रखे, जब श्वाँस लेना हो तब गर्दन सीधी करे, तीनों बन्ध छोड़ दे ऐसा उसे २१ बार कर सकते हैं । श्वाँस लेते समय धीरे धीरे लें ।

लाभ : मन कि चंचलता दूर होता है, जठराग्नि प्रदीप्त, उदर रोगों में लाभप्रद होती है । बुद्धि सूक्ष्म व तीब्र होता है, वीर्य का ऊर्द्ध गती होने से स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि धातु विकारों कि निवृत्ति होती है । पेट के सभी अवयवों पर विशेष बल पड़ता है ।

अनुलोम विलोम प्राणायाम : वायें नाक से श्वाँस ले दायां बन्द रखे हाथ नासिका के थोड़ा ऊपर रखे । वायां बन्द कर दायें से श्वाँस तेजी से छोड़ दे । दायें से श्वाँस लेकर बन्द करले वायें में श्वाँस छोड़ दे यह एक प्राणायाम हुआ । इस प्रकार एक मिनट से १० मिनट तक कर सकते हैं । इसके द्वारा ६२ करोड़ ७२ लाख १० हजार २ सो १० नाड़ी परिशुद्ध होती है ।

लाभ : बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दश हाजार दो सौ दश नाड़ी शुद्ध होता है । जोड़ो का दर्द, गठिया, कम्पवात, स्नायु दुर्वलता, मुत्ररोग, धातुरोग, सर्दी, जुकाम, पुराना नजला, साइनस्, आस्थमा, खासी, टान्सिल्, कफरोग, शीत-पित्त, अम्लपित, हृदय की शिराओं में आये अबरोध (ब्लाकेज) खुलने लगता है । तिन माह अभ्यास से ३०% कोलोस्ट्रल् दूर होकर आनन्द, उत्साह, निर्भयता की प्राप्ति नकारत्मकता दूर होती है । शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ होता है ।

भ्रमरी प्राणायाम : अगुंठा कानों पर दोनों अंगुठे के पास की अगुंठी भ्रूमध्य पर भोहों के ऊपर शेष तीन अंगुठी आंख के समीप नासिका तक ओं 'म' का उच्चारण नासिका से श्वाँस छोड़ ऐसा उसे २१ बार कर सकते हैं । 'मकार' का उच्चारण करें ओ मन में वोले ध्यान आज्ञाचक्र भ्रूमध्य में रखें ।

लाभ : मन की चंचलता दूर होती है । मानसिक तनाव, उत्तेजना, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि में लाभप्रद है । ध्यान के लिये उपयोगी है ।

उज्जायी प्राणायाम : इस प्राणायाम में पूरक करते हुए गले को सिकड़ते हुए गले से खराटे की तरह अन्दर श्वाँस भरे नाक से आवज नहीं निकलना है । कुंभक पूरक व रेचक में समान समय करे । बाद में पूरक से कुंभक दुगना करे । दायीं नासिका बन्द कर बाईं नासिका से रेचन करे । १० सेकण्ड से ज्यादा कुंभक करे तो जालन्धर मूलबन्ध भी लगावें ।

लाभ : साल भर की सर्दी, खाँसी, जुकाम के लिये लाभप्रद है, टान्सिल्, थायराईड् ग्लेण्ड, अनिद्रा, मानसिक तनाव, रक्तचाप, अजिर्ण, आमवात, ज्वर, प्लीहा आदि रोगों में लाभप्रद । गले को निरोगी व मधूर करने में एवं कुण्डलिनी जागरण, ध्यान आदि के लिये उत्तम है ।

शीतली प्राणायाम : हाथ घुटने पर रखें। जिभ नाली नुमा करे, खुला मुंह से श्वाँस धीरे धीरे ले । जिह्वा से घर्षण कर फेफड़ो को पुरा भरे कुछ क्षण रोक कर मुंह बन्द कर दोनों नासिका छिद्र से निकाल दें । फिर इसी तरह जिह्वा से धीरे धीरे श्वाँस ले इस प्रकार ८ से १० बार करें ।

लाभ : जिह्वा, मुँह, गले के रोगों, गुल्म, प्लीहा, ज्वर, अजिर्ण, में लाभप्रद । इसकी सिद्धि से भूख-प्यास पर विजय प्राप्त होती है तथा उच्च रक्तचाप में लाभ प्रदायक है ।

सीत्कारी प्राणायाम : जिह्वा को तालु में लगाकर दन्त पंक्ति को सटाकर ओठों को खोल श्वाँस धीरे धीरे सी-सी आवज करते हुए भरे, फेपड़े भरले, जालन्धर बन्ध लगाकर कुंभक करे फिर मुंह बन्द कर नाक से निकाले । पुनः इसी तरह ८ से १० बार दोहरावे ।

लाभ : शीलती प्राणायाम की तरह लाभप्रद तथा दन्तरोग, पायरिया, गले, मुहँ, नाक, जिह्वा के रोग, दूर होते हैं । निद्रा कम होती है शरीर शीतल रहता है ।

चन्द्रभेदी प्राणायाम : बायें से ले कुंभक कर दायें से छोड़े, जालन्धर व मूलबन्ध सहित करें । शीत में कम करें ।

लाभ : शरीर में शीतलता लाता है व थकवाट दूर करता है । मन की उत्तेजना शान्त होता है, पित्त से होने वाले जलन में लाभप्रद है ।

सूर्यभेदी प्राणायाम : दायें से ले कुंभक कर बायें से छोड़े । गर्मी में कम करें । वजन कम करता है ।

लाभ : शरीर में उष्णता लाता है । वात व कफ से होने वाले रोग, रक्त व त्वचा का दोष, उदर कृमि, कोढ़, अजिर्ण, अपच, स्त्रीरोग आदि में लाभदायक है ।

प्रत्येक प्राणायाम शिवसंकल्प सहित : श्वाँस बाहर जाते समय विचार करे मेरे समस्त रोग बाहर जा रहे हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, राग, द्वैष बाहार जा रहे हैं । जिसे जो रोग दूर करना है उसकी भावना करे । (तीन मिनट् से पांच मिनट् तक करें ।)

ओंकार या सोऽहम् जप : श्वाँस प्रश्वाँस पर मन को टिका कर जाप करें । इसे केवली प्राणायाम कहते हैं । भीतर श्वाँस में 'सो' बाहर में 'हम्' करें व अर्थ पर ध्यान दे । जो परमात्मा है वह मैं हूँ, यह जन्म मृत्यु रूप शरीर मैं नहीं हूँ ।

नाड़ी शोधन प्राणायाम : अनुलोम विलोम प्राणायाम की तरह करना है किन्तु श्वाँस को यथाशक्ति अन्दर रोककर दायें स्वर से धीरे धीरे बाहर करना है फिर दायें से लेकर रोकले यथा शक्ति वायें से धीरे धीरे छोड़े इसे पूर्ण रूपेण धीमे करना चाहिये । साथ में कोई जप भी चलना चाहिये ।

मुद्रा विज्ञान

अंगुठे तथा अंगुलियों के अग्रभाग से नाना प्रकार की उर्जा तरंगे (इलेक्ट्रो मेगनेटिक वेव्ज) निकलती रहती है । इन अंगुलियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से करने तथा अंगुठे से मिलाने के द्वारा भिन्न-भिन्न मुद्राएं होती है । जो शरीर के पंचभूतों को संतुलित करने में सहायक बनती है । क्योंकि इन पांचों तत्त्वों के असन्तुलित होने से ही शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ।



अंगुली	**तत्त्वों का प्रतिनिधित्व**
अंगुठा	अग्नि (तेज, सूर्य)
तर्जनी(अंगुठे के पासवाली)	वायु
मध्यमा (मध्य की बडी अंगुली)	आकाश
अनामिका (सबसे छोटी अंगुली के पास)	पृथ्वी
कनिष्ठिका (सबसे छोटी)	जल

मुद्रा नियमावली

मुद्रा हर उम्रके व्यक्ति किसी भी समय कर सकते हैं । ध्यान उपासना के समय रखी जाने वाली सावधानि जैसे मन्त्र, दिशा, स्नान, आसनादि की कोई आवश्यकता नहीं है ।

मुद्राओं को कहीं भी खड़े, बैठे, घर, आफिस, ट्रेन, बस, प्लेन, टी.वी देखते, बात करते, मल त्याग करते अथवा पूजा, ध्यान के समय भी कर सकते हैं ।

मुद्रा दोनों हाथ से करने से ज्यादा लाभ मिलता है । किसी परिस्थिति में एक हाथ से भी कर सकते हैं । बाँये हाथ की मुद्रा शरीर के दाँये तरफ के रोगों के लिये एवं दाँये हाथ की मुद्रा शरीर के बाँये तरफ के रोगों को दूर करने में सहयोगी है ।

मुद्रा के समय दबाव सहज हल्का दें । शेष अंगुलियाँ सीधी रखें । मुद्रा में अंगुलियों का परस्पर स्पर्श विशेष महत्वपूर्ण है ।

कोई भी मुद्रा पूर्ण लाभ हेतु **45** मिनट तक करना चाहिये । **15** मिनट से प्रारम्भ करे, फिर समय बढाते चलें । यदि एक साथ **45** मिनट न कर सकें तो **25** मिनट प्रातः **25** मिनट संध्या कर लिया करें । एक क्षण का मुद्रा अभ्यास भी हमारे समस्त चक्रों पर प्रभाव डालता है ।

मुद्रा करते रहने से रोगी रोग से मुक्त हो जाता है एवं स्वस्थ व्यक्ति कभी रोगी नहीं होता है । प्रभावशाली कम्पन पैदा करने मे मुद्रा सहयोग करती है । मुद्रा स्वेच्छा एवं उपयोगिता अनुसार कम अथवा ज्यादा समय भी की जा सकती है ।

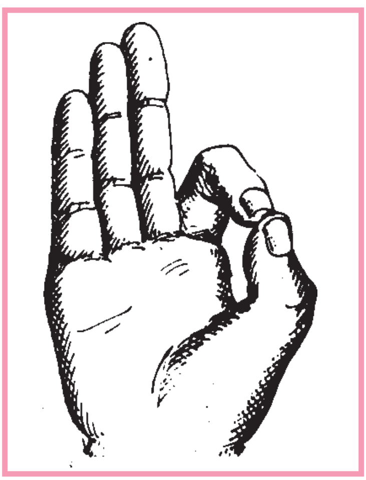
शंख मुद्रा, वायु मुद्रा, रोग हटने के साथ बंद करदेना चाहिये । अन्यथा हानि होने की सम्भावना भी हो सकती है ।

प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, ज्ञान मुद्रा तथा पृथ्वी मुद्रा अधिक समय करना भी हितकर है । ज्ञान मुद्रा तथा प्राण मुद्रा का अभ्यास सभी स्वस्थ व्यक्ति को करना चाहिये ।

दवाओं को लेते हुए भी मुद्राओं का अभ्यास कर सकते हैं । इसमे श्रद्धा विश्वास करने की भी जरुरत नहीं । यह अग्नि स्पर्श की तरह तत्काल प्रभावशाली है ।

मुद्राएं हमारे हाथों में स्थित शरीर के समस्त अवयवों के केन्द्र बिन्दुओं (स्वीचों) को प्रभावित करती है । एक्युप्रेशर का भी यह सिद्धान्त है कि हमारे हाथ शरीर के अवयवों का पेनलबोर्ड है । हाथ के जिस स्थान पर दवाने से दर्द हो वह शरीर के रोग का लक्षण है फिर वहीं एक मिनट दबाते रहो दर्द घटता जाएगा, यह रोग घटने का लक्षण है ।

ज्ञान मुद्रा



मुद्रा– अंगुठे के पास वाली तर्जनी अंगुली के अग्रभाग को अंगुठे के अग्रभाग के साथ मिलाकर रखे, बाकी तीनों अंगुलियाँ सीधी रहे ।

लाभ : सम्पूर्ण स्नायु मण्डल एवं मस्तिष्क पर बड़ा ही हितकारी प्रभाव पडता है । अविकशित शुक्र पर्वत का विकाश होता है । जीवन रेखा एवं बुधरेखा के दोष दूर होते हैं । पागलपन, उन्माद रोग, विक्षिप्तता, घबराहट, अनिद्रा, अनमनापन, डिप्रेसन, व्याकुलता, क्रोध, भय तथा आलस्यादि दूर होकर मन प्रसन्न एवं चेहरे पर तेज झलकने लगता है । स्मरण शक्ति वृद्धि होती है ।

ज्ञानी लोग इसी मुद्रा में बैठे रहते अपने शिष्यों को मौन भाषा में उपदेश करते हैं कि तीन गुणों, तीन शरीर एवं तीन अवस्था से पृथक् जीव ब्रह्म रूप है । इन तीन गुण, तीन शरीर, तीन अवस्था में आसक्त ब्रह्म ही जीव रूप होकर ८४ लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है ।





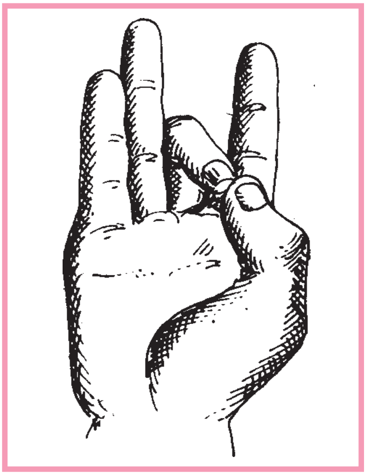
तीन अभिमान	**:**	**विश्व, तैजस, प्राग**
तीन शरीर	**:**	**स्थूल, सूक्ष्म, कारण**
तीन अवस्था	**:**	**जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति**
तीन गुण	**:**	**सत्व, रज, तम**

विशेष : पंजा लड़ाना, पाँव हिलाते रहने की आदत, व्यर्थ अंगुलियों को चटकाते रहने से मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है । स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है ।

अंगुठा बुद्धि का प्रतीक है । उससे मस्तिष्क के पिनियल तथा पिट्यूटरी ग्लेण्डस् का सम्बन्ध जुड़ा है । इस पर दबाव पड़ने से मस्तिष्क की उपरोक्त दोनों ग्रन्थियों पर प्रभाव पड़ता है । इन दोनों ग्रन्थियों के ठीक काम न करने से व्यक्ति चंचल, धोखेबाज, चोर, हत्यारा, शरारती बनजाता है । ग्रन्थि के ठीक काम करने से व्यक्ति महान ज्ञानी हो जाता है, अस्तु बच्चों को छोटी उम्रसे इसका अभ्यास अवस्य करना चाहिये । इससे ज्ञानचक्षु खुल जाता है ।

आकाश मुद्रा

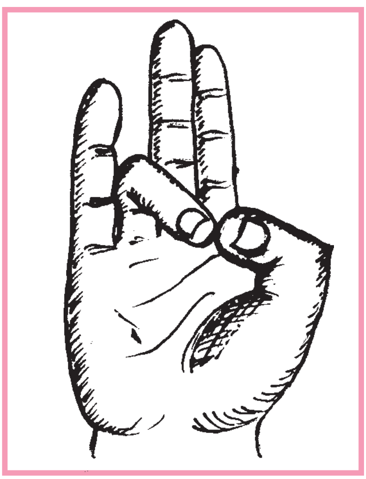
मुद्रा : सबसे बड़ी मध्यमा अंगुली को अंगुठे के साथ मिलावे । शेष कनिष्ठिका, अनामिका तथा तर्जनी अंगुलियों को सीधा रखे ।



लाभ : हड्डियों की कमजोरी दूर होती है । जम्भाई के समय गर्दन में अकड़न हो जाना या मुख बन्द न होता है तो इस मुद्रा द्वारा तत्काल लाभ होता है । प्रायः जम्भाई के समय मुख के पास हाथ लाकर चुटकी बजाते हुए देखा होगा । हृदय रोग में यह विशेष लाभकारी है । कान का दर्द शुन्य मुद्रा से बंद न हो तो आकाश मुद्रा करें ।

पृथ्वी मुद्रा

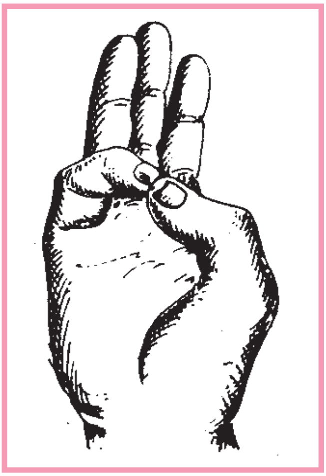
मुद्राः अनामिका **Ring finger** तथा अंगुठे को मिलावे ।



लाभ : समस्त शारीरिक दुर्बलता दूर हो जाती है । यह अंगुली तेज का प्रतीक है । इससे तेज विद्युत् विशेष रूप से प्रवाहित होता रहता है । यह जिसे स्पर्श की जाती है उस सम्बन्धी व्यक्ति की शक्ति को बढ़ाता है । इसलिए तिलक इसी अंगुली द्वारा प्रिय लोगों को किया जाता है । दुर्बल रोगी व्यक्ति को यदि रोज श्रद्धा एवं प्रेम से चन्दन तिलक करे तो

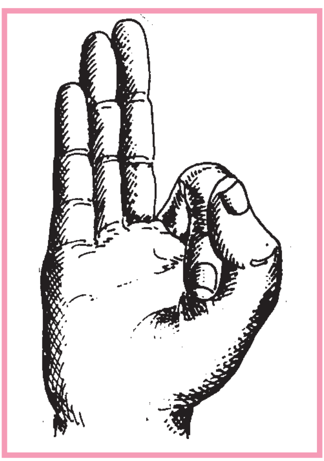
उसकी कमजोरी जल्दी ही दुर होने लग जाती है। दुर्बल का वजन बढ़जाता है, शरीर में तेज कान्ति इस मुद्रा से बढ़ाती है । मोटे होने के लिये, विचारों का संकीर्णता दूर करने, उदार हृदय करने, जीवन शक्ति बढाने तथा आध्यात्मिक उन्नति में यह पृथ्वी मुद्रा विशेष लाभकारी है ।

वरुण मुद्रा



मुद्रा : सबसे छोटी कनिष्ठिका अंगुली को अंगुठे के अग्रभाग से मिलादे शेष अनामिका, मध्यमा तथा तर्जनी अंगुलियों को सीधा रखें ।

लाभ : शरीर में जल तत्त्व की कमी दूर करती है । रूखापन दूर होकर स्निग्धता पैदा करती है । स्नायुओं का खिचाव व दर्द दूर हो रक्त शुद्ध होता है । प्रोष्टेट् ग्लेण्डस् के सूजन को कम करती है । मुत्र स्बन्धी रोग दूर होते हैं । विस्तर पर मुत्रत्याग होने को रोकती है ।



वायु मुद्रा

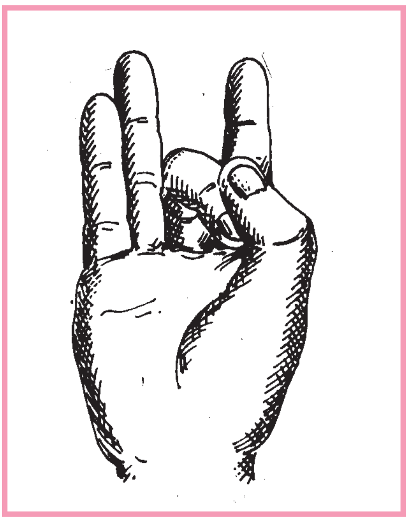
मुद्रा :– तर्जनी अंगुलीको मोड़ कर अंगुठे की जड़ में लगाकर उस स्थान पर अंगुठे से हल्का दबाव डाले ।

लाभ : तीव्रशरीर का वायु प्रकोप घटता है । भयंकर दर्द होनेपर इस मुद्रा को 45 मिनट तक करे । दीर्घ कालीन रोग हेतु नियमित करे । सायटिका,

वायुशूल, लकवा, सर्वाइकल, स्पोण्डीलिसिस, घुटना दर्द, गठिया वात दर्द, कम्पनवाय, गर्दन दर्द दूर होता है । ध्यान रहे – रोग शान्त होने पर इसे बन्द कर दे ।

गर्दन दर्द में वायुमुद्रा 45 मिनट करने के बाद जिस तरफ दर्द हो उस तरफ के हाथ की कलाई को दाँये-बाँये घुमाने से खट खट की आवाज होती है तो कलाई को दुसरे हाथ से पकड कर उसी वायू मुद्रा में हाथ रखते हुए अंगुठे से तर्जनी अंगुली पर दबाव हल्का देते रहे । उस कलाई को दाँये-बाँये एवं गोलाकार कुछ समय घुमावे इस तरह गर्दन दर्द एवं खट खट की आवाज चली जावेगी । पूरी गर्दन में दर्द हो तो दोनों हाथ में वायु मुद्रा कर कलाई को घुमावे । वायु मुद्रा की सहायक मुद्रा प्राण मुद्रा है । उसे भी कुछ समय करे तो ज्यादा लाभ होगा ।

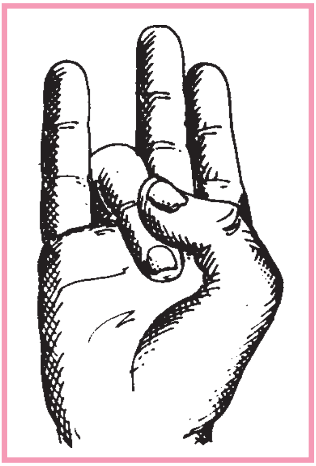
शुन्य मुद्रा



मुद्रा : मध्यमा अंगुली को अंगुठे के गद्दी (शुक्र के पर्वत) पर रख कर अंगुठे से उसे हल्का दबावे ।

लाभ : कान दर्द, तत्काल बंद हो जाता है । बेहरापन आ जाने से सुनाई पड़ने मे शीघ्र लाभ होता है । ज्यादा पुराना रोग होने पर **40** से **60** मिनट रोज करे । शीघ्र लाभ के लिये साथ आकाश मुद्रा भी करे ।

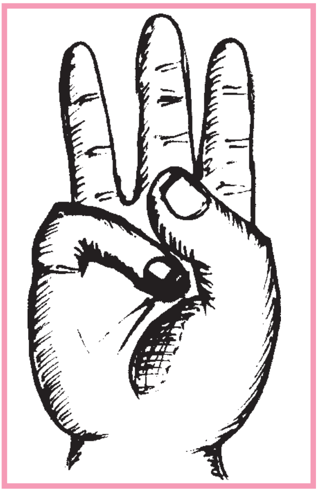
सुर्य मुद्रा



मुद्रा : अनामिका अंगुली को अंगुठे की जड़ मे लगाकर रखे एवं अंगुठे से हल्का दबाव डाले । पद्मासन में बैठ दोनों हाथों से करें ।

लाभ : मोटापा दूर करने, वजन कम करने हेतु यह मुद्रा विशेष लाभकारी है । इससे थाइराइड ग्रन्थि का वहाँ जो केन्द्र है वह दबता रहता है । इससे मानसिक तनाव भी दूर होता है । प्रतिदिन सुबह–शाम **10** मिनट करते रहना चाहिये ।

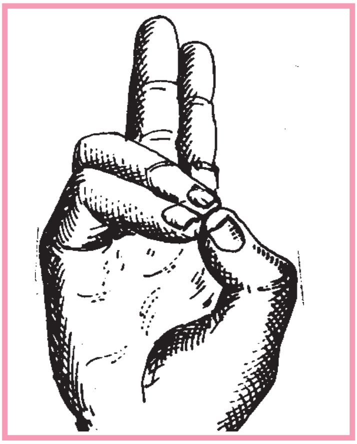
जलोदार नाशक मुद्रा



मुद्रा : कनिष्ठिका अंगुली को अगुंठे की जड़ में लगाकर रखे तथा अंगुठे के द्वारा उस पर हल्का दबाव डालते रहे ।

लाभ : जल तत्त्व की अधिकता से होने वाले रोग दूर हो जाते है । जैसे बार–बार मुत्र आना, पसीना अधिक आना ।

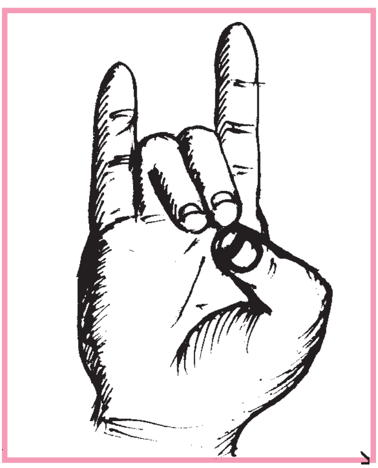
प्राण मुद्रा



मुद्रा : कनिष्ठिका तथा अनामिका अंगुली के अग्रभाग को अंगुठे के अग्रभाग से मिलावे शेष मध्यमा एवं तर्जनी अंगुली सीधी रखे ।

लाभ : यह अत्यन्त महत्वपूर्ण मुद्रा है । **Vitality** प्राण शक्ति का समस्त शरीर में संचार करने वाली मुद्रा करने से कमजोरी दूर हो व्यक्ति शक्तिवान, स्फुर्त्तिवान हो जाता है । थकावट मिट जाती है ।

तेजकी प्रतीक अनामिका बुधकी प्रतीक कनिष्ठिका अंगुली यूवा शक्ति व कुमार अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है । इससे शुक्र के अविकसित पर्वत का विकास होता है । जीवन व बुधरेखा के दोष दूर होते है । रक्त संचार उन्नत होता है । रक्त नलिका की रुकाावट दूर होती है । तन मन में नूतन स्फूर्ति आती है । बहुतसे विटामिन की कमी दूर हो जाती है । आँखो के सभी दोष दूर हो जाते हैं ।



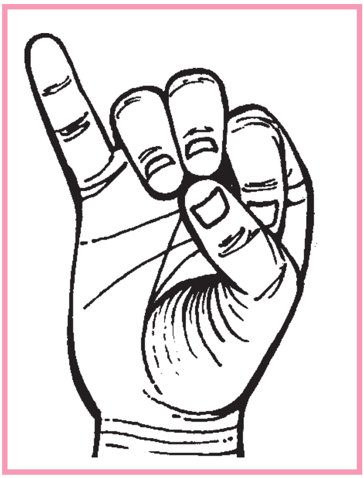
अपान मुद्रा

मुद्रा : मध्यमा तथा अनामिका अंगुली को अंगुठे के अग्रभाग से मिलादे । तर्जनी तथा कनिष्ठिका अंगुली सीधी रखे ।

लाभ : शरीर निरोग, विजातीय विषाक्त द्रव्य नष्ट हो जाते हैं । सात्विक भाव उदय होता है । मन निर्मल होता है । पसीना निकले

लगता है । मुत्राशय सम्बन्धी रोग दूर हो जाते है । **45** मिनट तक यह मुद्रा करने से बंद मुत्र खुलकर आने लगता है । अपान वायु नियन्त्रित हो जाती है । पेट दर्द, उदर शूल, पेटके अन्य उपद्रव को दूर करती है । कब्ज, बवासीर तथा दांत को स्वस्थ रखने हेतु **45** मिनट अभ्यास करे । उत्तानपाद आसन भी प्रतिदिन एक दो मिनट अवश्य करना चाहिये ।

अपान वायु मुद्रा



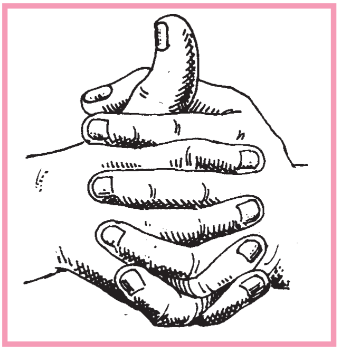
मुद्रा : तर्जनी अंगुली को अंगुठे की जड़में लगाकर मध्यमा तथा अनामिका अंगुली के अग्रभाग को अंगुठे के अग्रभाग से लगादै । केवल कनिष्ठिका अंगुली सीधी रहेगी ।

लाभ: हार्ट आटेक रोकने, हार्ट अटेक होने पर यह इन्जेक्शन से भी बढ़कर काम करती है । इसे मृत संजीवनी मुद्रा भी कहते हैं । इसका प्रभाव ह्दय पर तुरन्त पड़ता है । **Sourbitet** गोली का काम करती है ।

उच्च रक्तचाप (हाय ब्लड प्रेसर) वाले को दोनों समय **15** मिनट रोज अभ्यास करना चाहिये ।

सीढ़ी चढ़ने से होने वाली हाँपनी दूर होती है । सिर दर्द में तत्काल आराम पहुँचाती है । सभी प्रकार के पेट की गैस को शमन करती है । सभी प्रकार के वात के रोगों को दूर करती है ।

लिंग मुद्रा



मुद्राः दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर फंसाकर किसी एक अंगुठे को सीधा रखने से यह मुद्रा बनती है ।

लाभ : सर्दी में विशेष लाभकारी है । ठण्डे देशों में यह मुद्रा करने से गर्मी लग पसीना बहने लग जाता है । गरम देश में इसे अधिक देर नहीं करना चाहिये । इसे करन के दिनों में दूध, घी, फल, मेवाँ का सेवन करना चाहिये । संचित् कफ, नजला, खांसी–जुकाम तथा सर्दी से उत्पन्न सभी रोग दूर हो जाते हैं । पुराना नजला दूर हो जाता है । कफ प्रकृतिवालों को सर्दी में करना चाहिये । यह मुद्रा चर्बी नाश कर मोटापा दूर करती है । रोगों को रोकने की शक्ति बढ़ जाती है । जैसे ब्रोकियल, संक्रमण, सर्दीजन्य ज्वर व मोसम परिवर्तन से होने वाले सभी रोग ।

शंख मुद्रा



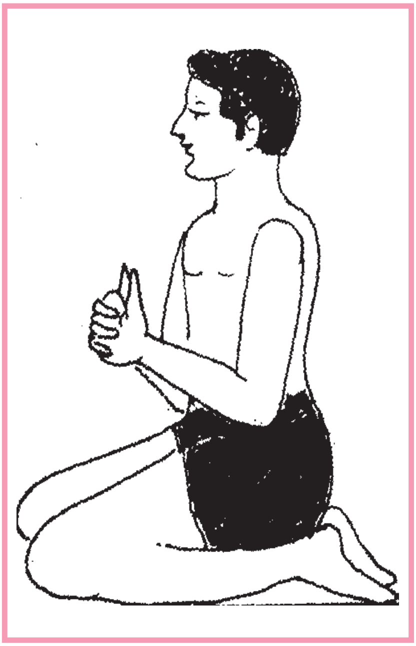
मुद्रा : बाँये हाथ के अंगुठे को दाँयी हाथ की मुठ्ठी में बंद कर बाँये हाथ की तर्जनी अंगुली को दाँयें हाथ के अंगुठे से मिलादे । शेष तिन अंगुली दाँये हाथ की बंद मुठ्ठीवाली अंगुलीयों पर लगी रहे । इसे हाथ बदल कर भी किया जा सकता है ।

लाभ : थाइराइड तथा नाभि केन्द्र पर दबाव पड़ता है । उनके सभी विकार दूर होते है । गले व वाणी के रोग,

टाँन्सिल, गले में दर्द, गले में खराश, खिच – खिच, सूजन को दूर करता है । वाणी मधुर हो जाती है । भुख लगने, पाचन क्रिया बढ़ाने व पेट के निचले भाग के विकार दूर करने में सहायक होती है ।

नाड़ी से सम्बन्ध रखने वाली **72** हजार नाड़ियों को प्रभावित करती है ।

सहज शंख मुद्रा

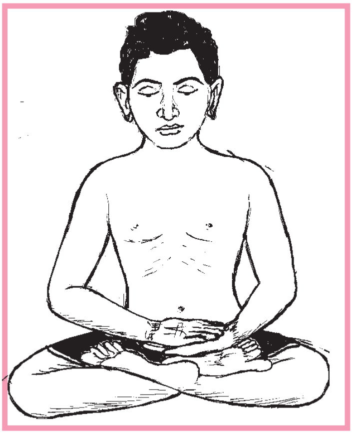


मुद्रा : बज्रासन में बैठ दोनों हाथों की अंगुलीयों को परस्पर फंसाकर हथेलियाँ दबाकर दोनों अंगुठों को मिलाकर रखें । अधिक लाभ हेतु मुलबन्द गुदा संकोचन के साथ करें ।

लाभ : काम ग्रन्थियों सबल होती है । वीर्य पुष्ट हो स्तम्भन शक्ति बढ़ती है । बवासीर गुदा रोग नहीं होता है । ब्रह्मचर्य पुष्ट होता है । शीघ्र वीर्यपात तथा स्वप्न दोष विकार दूर होता है । मुत्र सम्बन्धी रोग व धातु बहना बंद हो जाता है । वृद्ध युवा समान शक्तिशाली हो जाते हैं । हाथ की हथेलियाँ दबाने से मणिपूर व नाभी चक्र प्रभावित होता है ।

हकलाना, तुतलाना, आदि वाणी विकार दूर हो जाते हैं । आवाज सुन्दर, मधुर पेट के विकार दूर, गैस की बिमारि दूर होती है । पाचन क्रिया ठिक हो जाती हैं ।

ध्यान मुद्रा



मुद्रा : पद्मासन में बैठ बाँये हाथ की हथेली पर दाँये हाथ की हथेली रखे, दोनों हाथ के अंगुठो को परस्पर मिलावे । सर, गर्दन, रीढ़ की हड्डी सीधी रहे । आँख बन्द कर मन को विचार शून्य करने हेतु श्वाँसों के गमनागमन क्रिया के साथ लगा दे तथा श्वाँसों के साथ चलनेवोले अजपा जाप, अजपा गायत्री 'सोऽहम्' चिन्तन का ध्यान करे ।

लाभ: मुख मण्डल पर दिव्य आकर्षण, उसका तैजस ओरा (Aura) लोगों को आकर्षित करता है । मानसिक शान्ति,एकाग्रता,सन्तोष,दया, प्रेम,सहिष्णुता पैदा होती है । देहातीत अवस्था का भान होने लगता है एवं सद्गुरु कृपासे ज्ञानप्राप्त हो आत्मसाक्षात्कार हो जाता है ।

क्रोध शान्त मुद्रा



मुद्रा : दाँये हाथ की पांचो अंगुलीयों को परस्पर मिलादे , नासिका के अग्रभाग पर मध्यमा अंगुली का स्पर्श होता रहे, शेष सभी अंगुलियाँ नासिका को स्पर्श करती रहे बाँये हाथ से ज्ञान मुद्रा करते रहे । क्रोध तत्काल शान्त हो जावेगा । हल्का दबाव दे ।

मुद्रा द्वारा कुछ मुख्य रोगों का निराकरण

हार्ट ट्रबल : अचानक दिल का दोरा, दर्द, गैस का गुबार अपान वायु मुद्रा से तत्काल दूर हो जाता है । सहयोगी आकाश मुद्रा भी करें ।

अनिद्रा : वर्षों की अनिद्रा दोष तीन दिन ज्ञान मुद्रा से दूर हो अच्छी गहरी नींद आने लगती है । प्राण मुद्रा भी करे ।

स्मरण शक्ति : ज्ञान मुद्रा करें ।

हार्निया : उत्तानपादासन प्रतिदिन करते रहे ।

नाभि हटना : उत्तानपादासन लाभकारी है । *तरिका:* पीठ के बल गद्दे पर लेट जावे । दोने हाथ जाघों के बगल में हथेली पृथ्वी की तरफ श्वाँस अन्दर रोक दोनों पंजो को मिलाकर पृथ्वी से 6 इंच उपर एक से दो मिनट तक रखे । श्वाँस न रोक सके तो लेते रहें ।

मधुमेह, बवासीर, पेटदर्द : प्राण मुद्रा व अपान मुद्रा ।

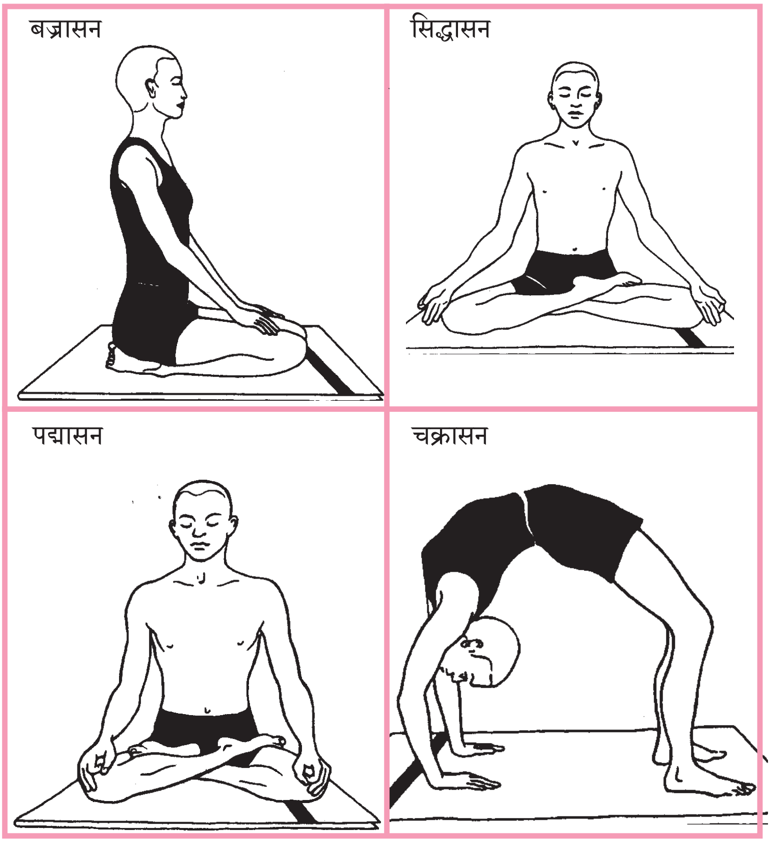
मोटापा : लिंग मुद्रा व सूर्य मुद्रा ।

मोटा होने : पृथ्वी मुद्रा व शक्ति वर्धक दुधादि पदार्थ खावे ।

उच्च रक्त चाप (High B.P.) : अपान वायु मुद्रा करे । प्राण मुद्रा भी करे ।

निम्न रक्तचाप (Low B.P.) : प्राण मुद्रा करे ।

योगासन रोग एवं आसनोपचार



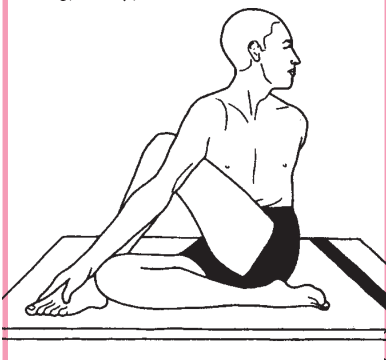
हाई ब्लडप्रेसर : बज्रासन, सिद्धासन, पद्मासन मत्यासन, शवासन

लो ब्लडप्रेसर : सर्वांगासन,हलासन, बज्रासन, पद्मासन, सिद्धासन और पश्चिमोत्तानासन

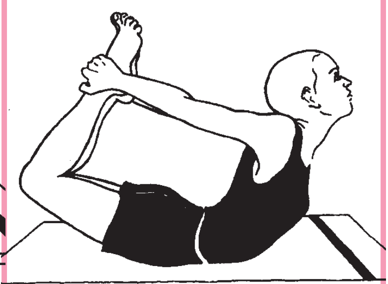
मोटापा : मण्डुकासन, मयूरासन, सुप्तबज्रासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन ।

गलेकी तकलीफ : मत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन, सिंहासन, सुप्तबज्रासन, सर्वांगासन ।

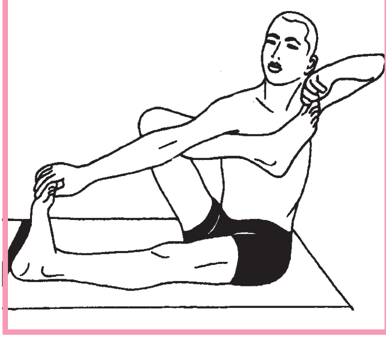
अर्द्ध त्स्येन्द्रासन



धनुरासन



आकर्ण्ण धनुरासन



गर्भासन



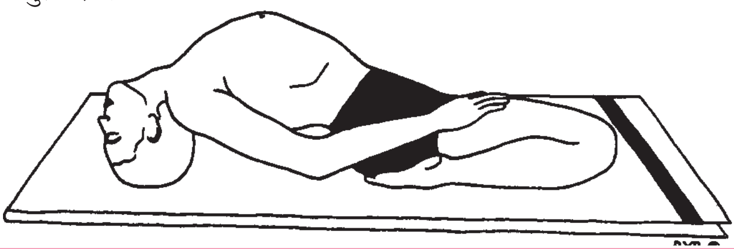
सरदर्द : पश्चिमोत्तानासन, हलासन, सर्वागांसन, शवासन

हार्निया : मत्स्यासन, सर्वागांसन, सुप्तबज्रासन

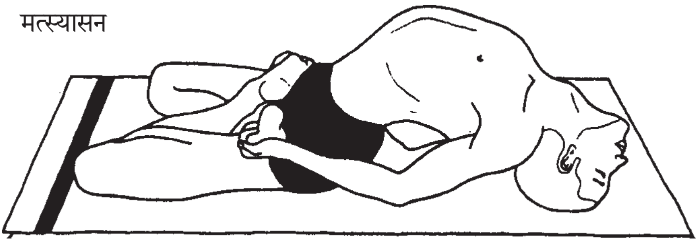
हार्ट ट्रबल : शवासन, बद्धपद्मासन, और सिद्धासन

अनिद्रा : सर्वागांसन, शवासन और सूर्य नमस्कार

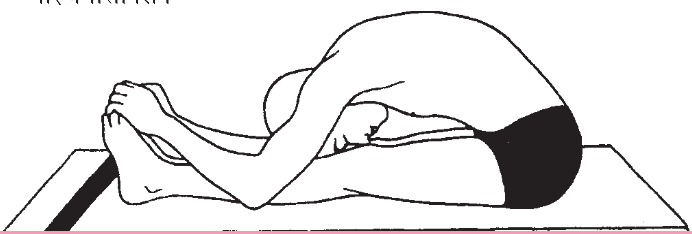
सुप्त बज्रासन



मत्स्यासन



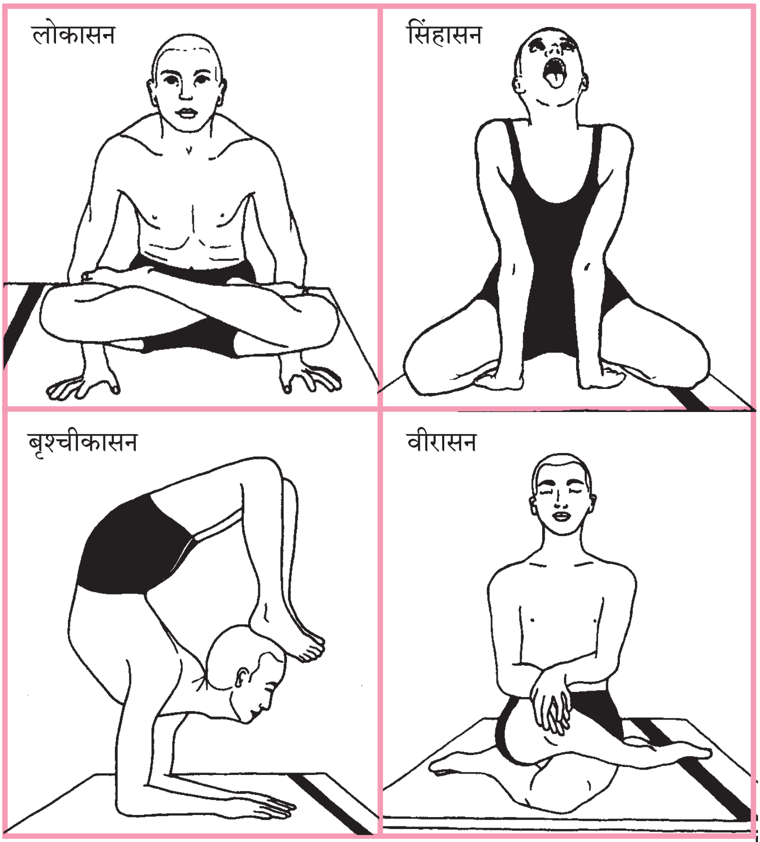
पश्चिमोत्तानसन



मासिक धर्म : धनुरासन, सुप्तबज्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मत्स्यासन, उत्तानपादासन

अधिक निद्रा : लोलासन, कुकुटासन, उत्तमांगासन, वकासन, तोलाासन, उत्थित द्विहस्त भुजासन, उत्थित एकपाद शिरासन ।

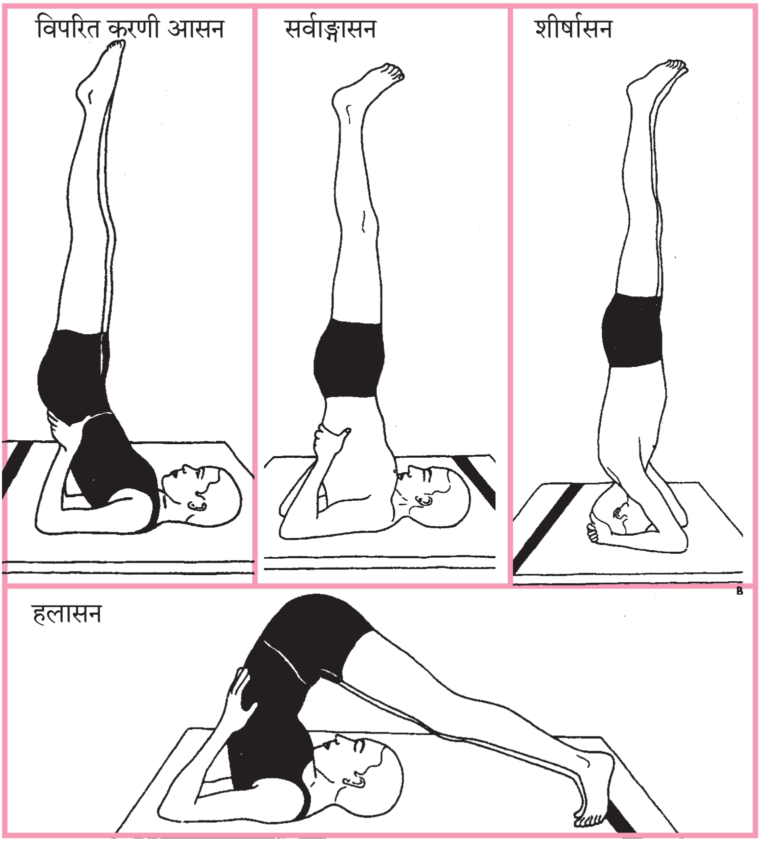
आतों के रोग : लोलासन, गर्भासन, बद्धहस्तापद्मासन, सूर्यनमस्कार ।



चर्मरोग : पद्मासन, सिद्धासन, सिहांसन, वीरासन, उत्कटासन, मण्डुकासन, सुप्तबज्रासन

फेफड़े व सीने के रोग : बद्धपद्मासन, उत्कटासन, सर्वांगासन, विपरीत करणी, शीर्षासन, वृक्षासन, सूर्यनमस्कार,

ज्वर जीर्ण स्वर : गर्भासन, उत्थित पद्मासन, सिद्धासन, गोमुखासन, शवासन,



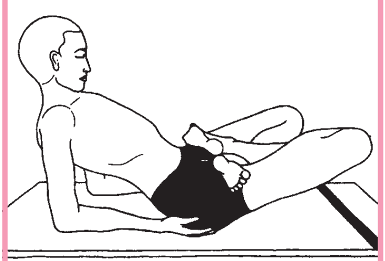
नपुंसकत्व : पद्मासन, सिद्धासन, सिंहासन, बज्रासन, मण्डुकासन, सुप्तबज्रासन

नाडियों की अशुद्धि : लोलासन, उत्थित एकपाद शिरासन

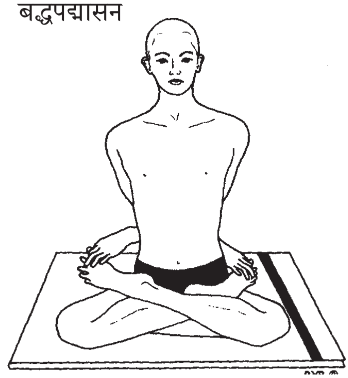
पैर के रोग : बद्धपद्मासन, उत्कटासन, आकर्षण धनुरासन, तोलांगुलासन, पद्मासन,

पथरी : मत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन, तोलांगुलासन, वज्रासन

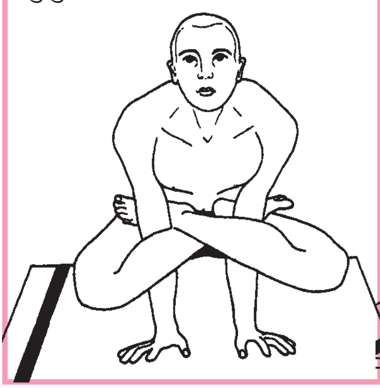
तोलाङ्गुलासन



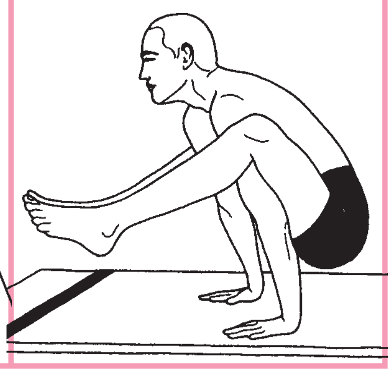
बद्धपद्मासन



कुक्कुटासन



द्विहस्तभूजङ्गासन

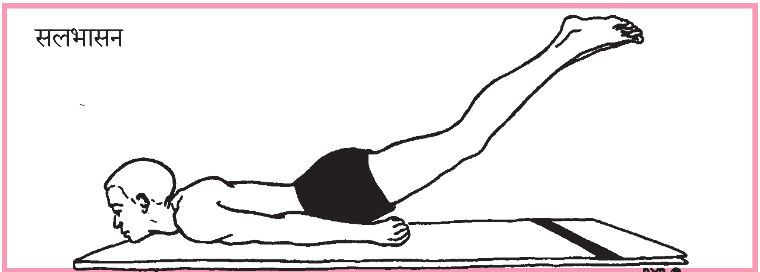


पित्तरोग : हलासन, वृत्तासन और शलभासन

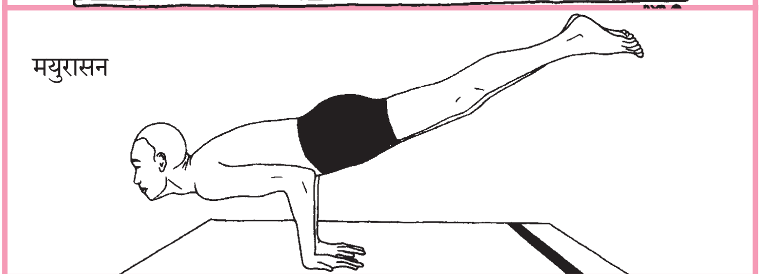
मुच्र्छा/हिस्टीरिया: पद्मासन, वक्रासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, वृषासन, मण्डुकासन, वज्रासन

लकवा : पद्मासन, वीरासन, पर्वतासन, मत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन, सिद्धासन, सिंहासन, मुण्डकासन

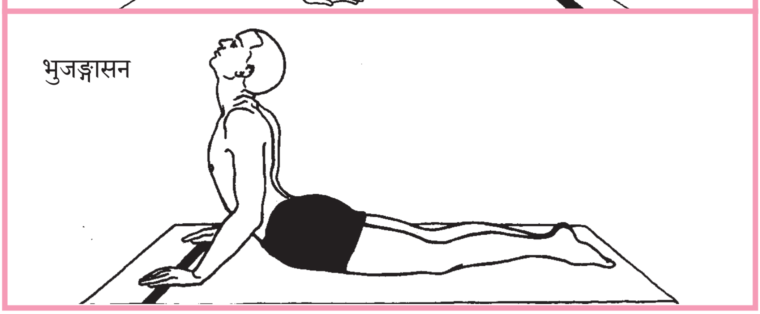
फील पाँव : मत्स्येन्द्रासन, उत्कटासन, एकपाद शिरासन



सलभासन



मयुरासन



भुजङ्गासन

रक्त विकार : पद्मासन, उत्कटासन, सिद्धासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन

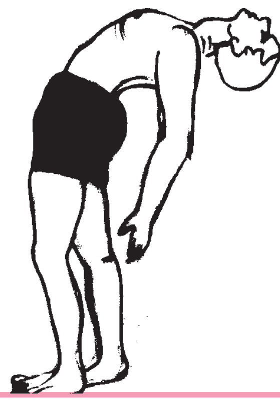
रक्तक क्षय : लोलासन, कुक्कुटासन, बकासन, उत्कटासन, सर्वांगासन, शीर्षासन, वृक्षासन

मधुमेह : सिद्धासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, हलासन, चक्रासन, मयुरासन

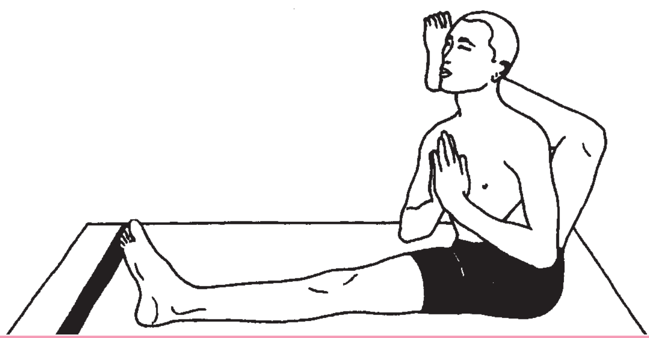
वकासन



वृक्षासन



एकपाद शिरासन

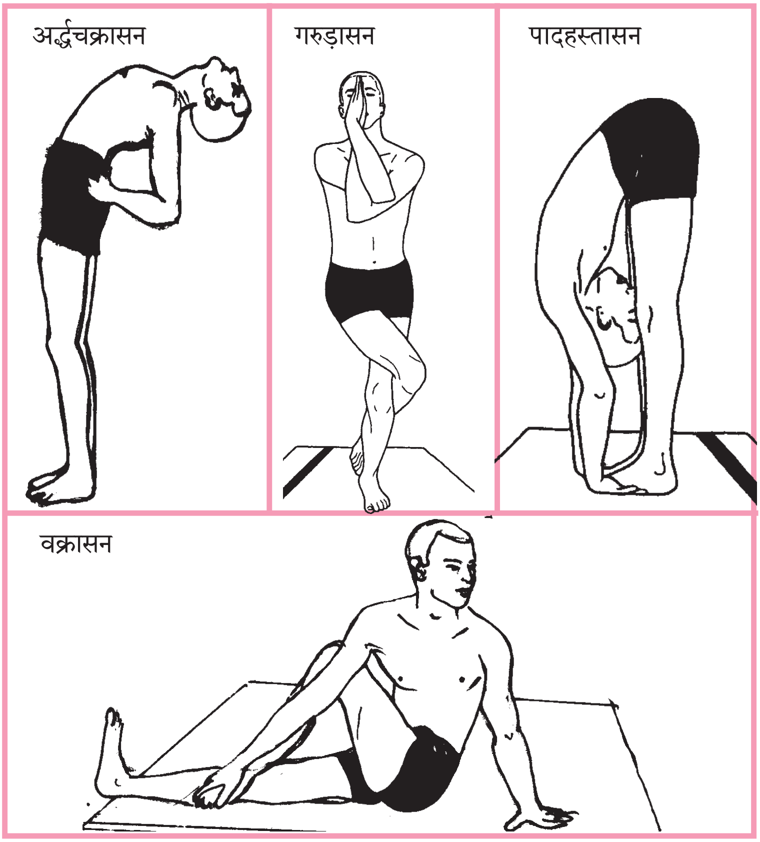


क्षय व दमा रोग : सिद्धासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, सुप्त वज्रासन, भुजंगासन

यौन ऊर्ध्वीकरण : सिद्धासन, शीर्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन

पेटदर्द, पायोरिया : अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, पद्मासन, वज्रासन, और पश्चिमोत्तानासन,

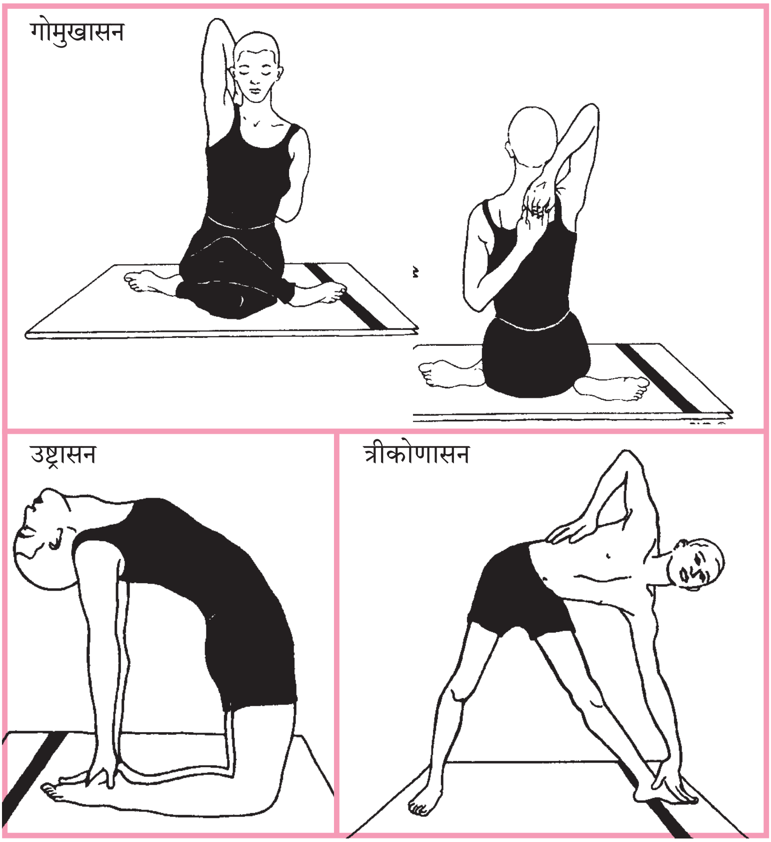
आंख, कान, नाक रोग : सिद्धासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन



नष्टार्तव, पीड़ातार्तव प्रदर गर्भासय,वीजाशयरोग :
सर्वागांसन, शलभासन, पश्चिमोत्तासन, भूजंगासन
(सगर्भावस्था में ये आसन न करे)

क्रोनिक ब्रोंकाइटीज : मत्स्यासन, शलभासन,

कफ, कास, खासि : मत्स्यासन, शलाभासन, हलासन, बाह्य प्राणायाम

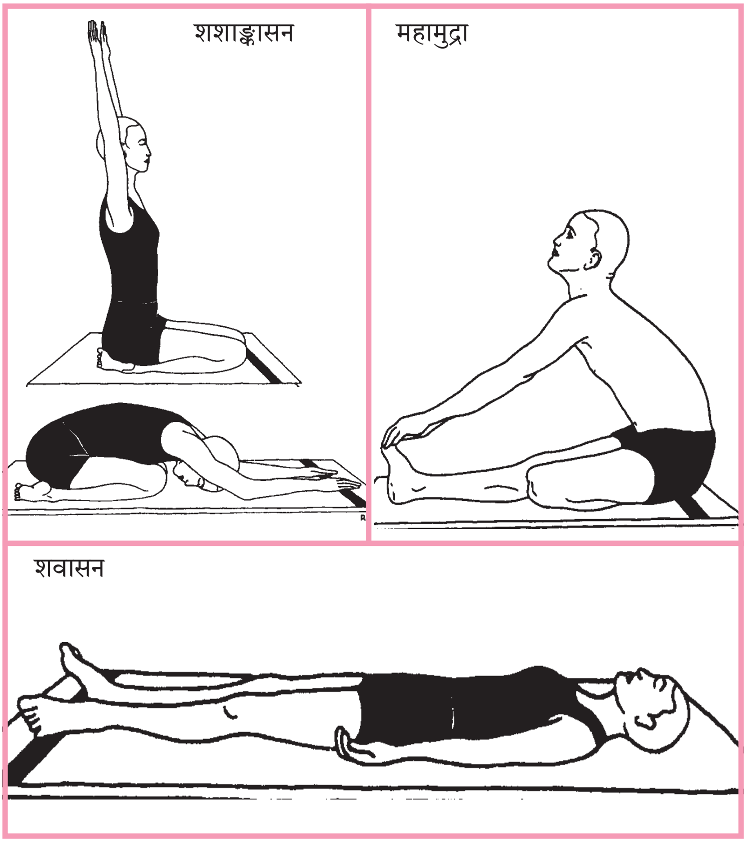


पाचन क्रिया : स्र्वांगांसन, हलासन, मयुरासन और बद्ध पद्मासन

यकृत प्लीहा वृद्धि : सर्वांगांसन, हलासन, मयुरासन, बद्धपद्मासन

स्थायी कब्ज : हलासन, मयुरासन, धनुरासन, मत्स्यासन, पादहस्तासन

बवासीर, अर्श : सिद्धासन, पश्चिमोत्तासन, शीर्षासन, गोमुखासन, महामुद्रा ।

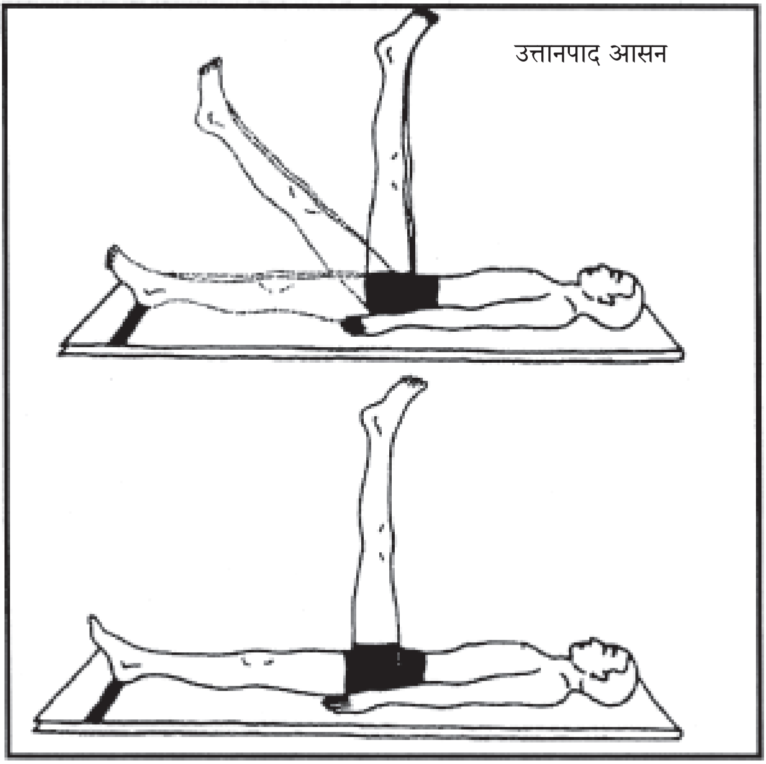


हाथ पैर झोटे होना : गरुड़ासन, त्रिकोणासन, उत्कटासन,

पेचिस मरोड़ा : बद्धपद्मासन और कुक्कुटासन,

संधिवात : वृश्चिकासन, शीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगसन

कुष्टरोग : शीर्षासन, पद्मासन, सिद्धासन, सिहांसन, गोमुखासन, वज्रासन, वृषासन

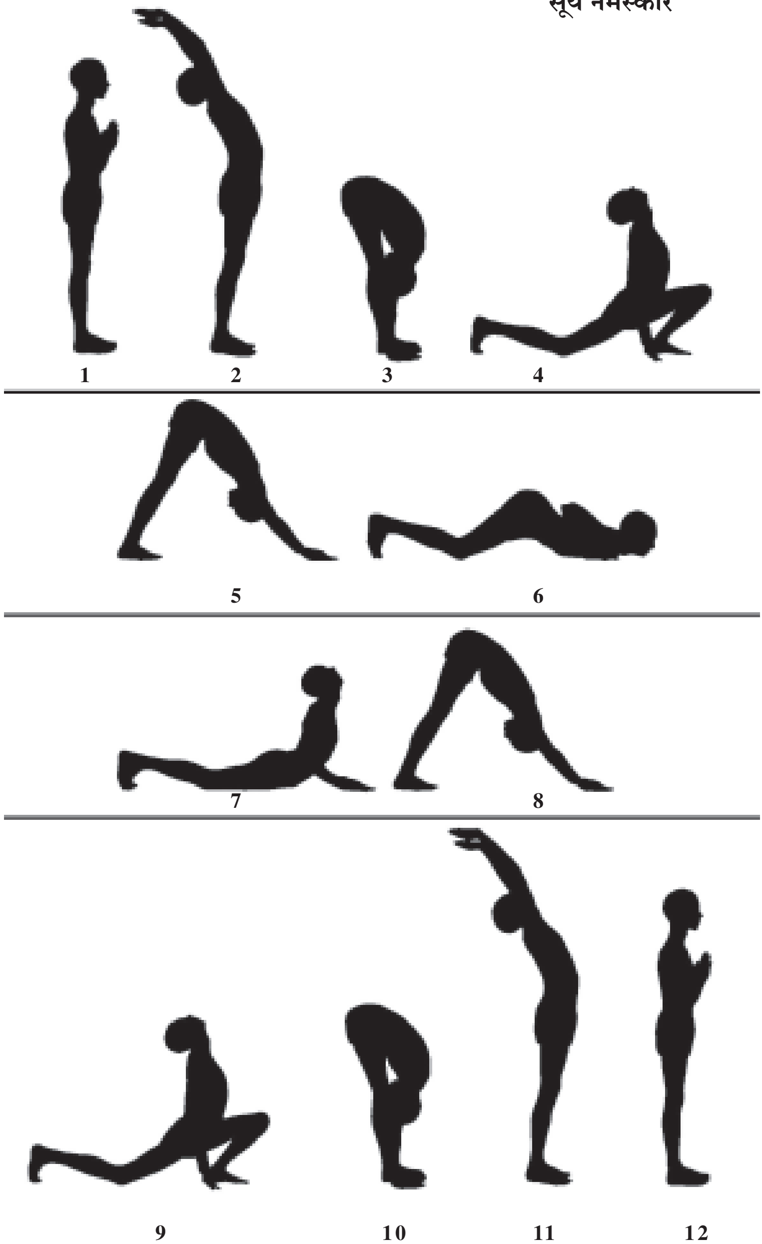


उत्तानपाद आसन : पांव उठाकर यह आसन कियाजाता है । इसलिए यह आसन उत्तानपादासन या पादोत्तासन कहलाता है ।

बिधि : पीठ के बल लेट जाए । हाथ पैर सीधे रखें । हथेलियाँ जमीन की ओर गर्दन जमीन पर टिकी रहे । सांस लेकर रोकते हुए एक पाव जमीन से एक फुट ऊँचा उठा पंजेको ओग पीछे करें एवं श्वाँस छोड़ते हुए धीरे से जमीन पर रखें । इसी तरह दूसरे पैर से भी करें ।

इसके बाद दोनों पैर एक साथ उठाकर अपने श्वाँस रोकने की क्षमता अनुसार करे, यह एक राउण्ड हुआ । इस प्रकार **3** राउण्ड करें । पैरों को झटका देकर न उठावें न गिरावें ।

सूर्य नमस्कार



आसन एवं लाभ

उत्तानपाद आसन : इन आसन से गैस, हार्निया रोग कम होगा, पेटकी चर्वि घटेगी, भूख बढ़ेगी । पेट दर्द एवं पेट सम्बन्धी अन्य रोग कम होंगे । मासिक धर्म नियमित होकर पीड़ासे मुक्ति मिलेगी । अधिक रक्तश्राव बन्द होगा । कमर दर्द कम होगा । रक्त प्रसार सही होगा । हृदय को बल मिलेगा । नाभि अपनी जगह स्थिर रहेगी । पांव, जंघा, कमर पेट को शक्ति प्राप्त होगी ।

शवाशन : सभी अवयवों को आराम, थकावट दूर, रक्तचाप (ब्लडपप्रसर) नियमित एवं शरीर में स्फूर्ति ।

पवनमुक्तासन : अपान वायु निकलजाना, चर्बी घटना, रीढ़की हड्डी मजबुत, फेंफड़े का ठीक काम करना, घुटनो का दर्द दूर होना, कब्ज दूरहोना, बवासीर, भगन्दर, गैस, अपेन्डिक्स्, सायटिका, हर्निया में लाभ

सर्वागांशन : इसे सभी उम्र के लोग कर सकते हैं । मस्तिष्क, फेंफड़े, हृदय मजबूत, रक्तशुद्धि, आंख, नाक, कान, सम्बन्धित बीमारियाँ दूर, पाचन शक्ति वृद्धि, गर्दन के नाड़ियों को शक्ति, मस्तिष्क को शक्ति, स्मरण शक्ति की वृद्धि, भय से मुक्ति ।

यह आसन गर्भस्त महिला, उच्च रक्तचाप, अधिक जुकाम, गर्दन सम्बन्धित दर्द, स्पाडिलाइटिस् रोगाबस्था में न करें । रोगमुक्त अवस्था में इसे प्रारम्भ करें ।

चक्राशन : पेट व रीढ़ की हड्डी हाथ में शक्ति, गर्भाशय सम्बन्धी दोष दूर, मस्तिष्क में रक्त प्रसार ठीक, सरदर्द दूर, हाथ पैरों का कम्पन दूर, युवक युवतियों के स्वास्थ्यवर्धक ।

हलासन : मधुमेह, मोटापा, हार्निया दूर, निःसन्तान क लिये आशाजनक, उदर रोग दूर, रीढ़ की हड्डी ठीक्, नितम्बो, कुल्हों तथा कमर को मजबुत करता तथा सभी ग्रन्थियों में स्फूर्ति, गर्भस्त महिला, उच्च रक्तचाप, छाती दर्द, कान से पीब बहना, अधिक जुकाम, गर्दन में दर्द व स्पन्डिलाइटिस् के रोगी यह आसन न करें ।

कर्णपीड़ासन : हलासन से घुटने मोड़ कन्धे कान के पास लगाना । इससे बहरापन एवं कान सम्बन्धित रोग दूर होते हैं । तथा सर्वाङ्गासन एव हलासन के सभी लाभ मिलजाते हैं ।

चक्की चान क्रिया : इस क्रिया से गर्दन, कमर मजबुत होते हैं । पाचनन शक्ति बढ़ती है, कब्ज दूर होता है, पैरों हाथों एवं कन्धों की नशे मजबूत होती है एवं दर्द दूर होता है ।

नाभी आसन : नाभी के बल पर शरीर का भार उठावे । आगे से पैर पीछे हाथ उठे एवं तन हुए रहे । श्वाँस रोककर रखे, नाभि, पेट को बल मिलता है । नाभि अपनी जगह स्थित रहता है । अल्सर, हार्निया, गर्भस्त, आप्रेसन होने के बाद छह महिने तक न करे ।

भुजंगासन : सर्वात्रकल्, स्पान्डिलाइटिस् दूर होते है, छाती, हाथ, रीढ़, फेफड़े मजबुत् हाते हैं । स्वप्न स्खलन, वीर्य रक्षा, गर्भाशय रोग दूर, ऋतुस्त्राव सम्बन्धी रोग दूर, स्मरण शक्ति वृद्धि, मोटापा कम, गर्दन सम्बन्धी अन्य दर्द दूर कमर पतली, मजबुत होगी ।

शलभासन : पेट के बल लेट पैरों को जंघा सहित ऊपर उठावे । इससे कब्ज दूर, छोटी बड़ी आंते साफ होगी, मधुमेह, हर्निया, सायटिका में लाभ, पेंक्रियाज ग्रन्थि ठिक काम करेगी ।

गर्भस्थ महिला, पेट का आप्रेसन किया व्यक्ति, पेट दर्द वाला न करें ।

धनुरासन : भुजंगासन एवं सलभासन दोनों के लाभ इसमें प्राप्त हो जाते हैं । मासिक स्त्राव, योनी का बाहर न आना, गर्भाशय सम्बन्धी दोष दूर, ग्रन्थियों को शक्ति, कमर पतली, छाती पेट की चर्बी घटती है । मोटे लोग पैर में कपड़ा बांध खीचकर लाभ लें ।

दिल की धड़कन तीव्र, कमर दर्द, अल्सर, हार्निया, उच्च रक्तचाप, गर्भिणी, तुरन्त आप्रेसन वाले यह आसन न करें ।

पश्चिमोत्तासन: पीठ को शक्ति, शरीर की चर्बी, मोटापा कम, मासिक धर्म नियमित, रीढ़ की हड्डी मजबूत । स्थूल पेट वाले पौरों में कपड़ा बांध खीचने की चेष्टा करे तो धीरे धीरे पैर पकड़ सकेंगे । अति सर्वथा वर्जित है, जल्दवाजी न करें । धीरे धीरे बढ़ें ।

तितली आसन: पंघ की तरह घुटने हिलाने से जंघ, घुटने, पिड़लिया मजबुत । मुत्र सम्बन्धी रोग, उध्वतिाः कुण्डलनी जाग्रत, जननेन्द्रिय सम्बन्धी व्याधि दूर ।

गोरक्षासन : तीतली आसन में बैठ जाने से, विर्य रक्षा मासिक धर्म सम्बन्धी रोग, मुत्र सम्बन्धी रोग , कमर दर्द ठीक् हाता है । शुक्र ग्रन्थियां मजबूत होती है ।

बज्रासन : अजीर्ण, वात, सायटिका दर्द में उपयोगी, पिड़लियाँ घुटने, जाघों को शक्ति भोजन पचाने में बहुत लाभकारी ।

शशांकासन : क्रोध पर नियन्त्रण, पवनमुक्तासन के सभी लाभ, कमर गर्दन सम्बन्धी दर्द दूर । बज्रासन में बैंठ श्वाँस छोड़ दोनो हात्र कमर के पीछे बांध किया जाता है । तथा बैठ नाभि को दोनो ओर मुट्ठी बांध रख कर भी कियाजाता है ।

उष्ट्रासन : दमा, टी.बी, छाती, फेफड़े सम्बन्धी रोग दूर, मोटापा, कम, जीर्ण शक्ति बढ़ती है, जांघ, घुटने, कमर, पीठ, भुजाऐं तथा गर्दन बलिष्ठ, रीढ़ की हड्डी मजबुत ।

सुप्त वज्रासन : वज्रासन में बैठ कोहनी के सहारे पीठ सर को झुकावे सर जमीन पर छाति उठी रहेगी । पेट के अवयवों तथा गर्दन की नसों को स्फूर्ति । स्पांडिलाइटिस्, ब्रोकाइटिस्, आस्थमा दूर फेफड़े मजबूत, कमर, एड़ी, पिंड़लिया तथा जांघ ठीग होगें । दो ग्लास पानी पीकर करने से कब्ज दूर । कमर दर्द वाले इसे न करे ।

मत्स्येन्दासन : रीढ़ की हड्डी, पीठ, रक्त नाल बलिष्ठ, नाड़ी मण्डल समर्थ, कमर के पास की चर्बी घटती है, पेंक्रियास् ग्रन्थि ठीक काम करती है, मधुमेह रोग दूर, भूख बढ़ती है, कब्ज दूर, सकला व्याधि निवारण ।

गोमुखासन : घुटने पर घुटना रख बैठ एवं जो घुटना ऊपर हो उसी हाथ को कन्धो परसे पीठ की तरफ ले जाकर दूसरे हाथ को कमर के पीछे लेजाकर पकड़े घुटने हाथ बदल कर भी करे ।

पेट के अवयवो, नसो तथा रीढ़ का हड्डी लाभदायक गर्दन सम्बन्धी दर्द दूर । मधुमेह, अतिमूत्र, इन्द्रियों

की कजोरी, रक्तचाप तथा हार्निया दूर होती है । सभी जोड़ों का दर्द दूर करता है ।

सिद्धासन : हृदय, सांस और विर्य सम्बन्धी व्याधियाँ दूर होती है । वासना कर्म, स्मरण शक्ति की वृद्धि, ध्यान के लिये मन की एकाग्रता ।

पद्मासन : हृदय, फेफड़े तथा सिर में रक्त प्रसार ठीक तरह से, बुद्धि कुशलता, ध्यान में उपयोगी ।

योग मुद्रा : पद्मासन में बैठ दोनों हाथों को पीठ पर बांधकर श्वाँस छोड़ सर जमीन पर रखने से मधुमेह, उदर की व्याधियाँ दूर होता है, जांघ की नसों को शक्ति, मनशान्त, क्रोध कम होता है ।

बद्ध पद्मासन : रक्त चाप नियमित, साइटिका दर्द कम, स्त्रियों के स्तनों को बल मिलता है, दुध सन्तोषजनक उत्पन्न होता है । पिठ दर्द दूर होता है । हृदय को बल मिलता है ।

मत्स्यासन : पद्मासन में बैठ एक एक कोहनी के सहारे पीठ की तरफ सर को लेजाकर जमीन पर रखे, दोनों हाथों से पैर के अंगुठे पकड़े । इससे स्पन्डिलाइटिस्, गर्दन सम्बन्धी दर्द दूर, पेट साफ, अपान वायु निकलती है । फेफड़ो तथा उदर को बल प्राप्त होता है ।

मयुरासन : आंतों तथा जीर्ण कोश को बल मिलता है । जीर्ण शक्ति बढ़ती है । मोटापा कम होता है । कलाई एवं कन्धे बलिष्ठ होते हैं । पेट में कृमि दोष दूर, मधुमेह कम, जहर का प्रभाव दूर हो जाता है, हाथों की शक्ति बढ़ता है । कमजोर हाथवाले, हर्निया, गर्भिणी, हृदयरोगी यह आसन न करे ।

शीर्षासन : ग्रन्थियों का पुष्टि, सिरकी सभी नाड़ियों में रक्त प्रसार, फेफड़े, हृदय ठीक काम, शीघ्र सफेद बाल नहीं होंगे । मधुमेह, बवासिर, वीर्य स्खलन कम होगें । स्मरण शक्ति बढ़ेगी, आंख की दृष्टि ठीक होगी, चेहरे पर तेज, कान्ति आभा की वृद्धि ।

आंख, कान सम्बन्धी तीव्र रोग, उच्च रक्तचाप, हार्ट अटेक, हृदय रोग, गर्दन में दर्द, स्पन्डिलाइटिस्, सिर में चोंट व घाव वाले यह आसन न करें ।

हास्यासन : इसे सभी उम्रके सभी अवस्थाओं में कर सकते हैं । जिसका पेट, हृदय का अप्रेसन अभी हुआ है वे इसे न करे । वे मन्द मन्द मुस्कान लावें ।

समस्त रोग से मुक्ति

लम्बी गहरी श्वाँस भीतर लेते समय ऐसी भावना करो कि मैं स्वस्थ हूँ । श्वाँस बाहर जाते समय ऐसी दृढ़ भावना करो कि मेरा सम्पूर्ण रोग निकल गया । यह सिद्ध पुरुषों का बताया सरल, सुगम योग है । आप आज से ही करें और अपने में पूर्ण आरोग्य का अनुभव करें ।

असाध्य रोग से मुक्ति

सूर्योदय के पांच मिनिट पहले ही सूर्योदय होने की लालिमा वाली दिशा की और मुख कर रोगी खड़ा हो जावे । सूर्य पूर्ण उदय होने के पहले क्षणों में रोगी अपने हाथ पैर पूर्ण ढीले छोड़ दे । अब ऐसी दृढ़ भावना अपने मन में करे कि मेरे अन्दर जितने भी रोग छिपे एवं प्रकट है वे सब बाहर निकल रहे हैं । और सूर्य की किरण के द्वारा मेरे अन्दर शक्ति, स्वास्थ्य, आरोग्यता प्रवेश हो रहा है । थोड़ी देर तक ऐसी भावना करो । जब सूर्य पूर्ण बाहार दिखाई पड़ जावे तब उसे नमस्कार कर वहाँ से हट अपने काम में चला जावें या बिस्तर पर चला जावें ।

संकल्प सिद्धि

तुम आत्मा अनन्त शक्तियों के भंडार हो, अनेक कलाओं के निधान हो । अपने आपकी महिमा न जानकर ही आप चित्र, मूर्ति,की पूजा करते हुए भी दुःखी बने जीवन व्यतीत करते रहते हो ।

अपने आत्मा पर, अपने आप पर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास करो । तुम्हारा संकल्प अवश्य पूरा होगा ।

किन्तु संकल्प करने के साथ उसी समय आप विकल्प भी शुरु कर देते हो कि यह काम कैसे हो सकेगा ? यह मुझसे नहीं हो सकेगा । मैं सुखी इस जीवन में नहीं हो सकुंगा । मैं अब इस रोग से मुक्त नहीं हो सकुंगा । यह मुझे नहीं मिल सकेगा ।

उपरोक्त हीन भावना करने से हमारे शरीर में विद्यमान जीवन तंतु अर्धमृत हो मुर्च्छित हो जाते हैं एवं शरीर में गिरावट, विचारों में दीनता, छाजाती है और हम असमर्थ, कमजोर होने लग जाते हैं । अस्तु नकारात्मक, निराशात्मक विचार को कभी मन में न लावें ।

तुम आत्मा सत्य संकल्प हो । तुम शुभ - अशुभ जैसी भी भावना, निष्ठा जगाओगे वैसी ही पूर्ण हो जावेगी । जिस समय मन लय-विक्षेप से रहित शान्त हो, उस अवस्था का जैसा भी संकल्प होगा वह अवश्य पूर्ण होता है । निःसकंल्प अवस्था लाने के लिये कोई योग समाधि करने की जरुरत नहीं । बस जब श्वाँस-प्रश्वाँस नासिका के दोनों छिद्रों से समान रूप से बह रहे हो, अर्थात् बिना रुकावट के दोनों नासिका छिद्र से भीतर-बाहर श्वाँस समान रूप से चल रही हो, उस निःसंकल्प अवस्था, शान्त अवस्था में जो विचार करोगे वह पूर्ण

होगा । संकल्प तो तुम करते हो, किन्तु मजबूती से कहाँ करते हो ? तुम्हारा आत्म विश्वास नहीं, इसीलिये तो तुम्हारा सोचा हुआ काम सिद्ध नहीं होता है ।

संशयात्मा विनश्यति

इसलिये आज से अपने आप पर पूर्ण श्रद्धा करो । विश्वास करो कि मैं आत्मा सत्य संकल्प कल्पवृक्ष हूँ । आत्म पद में स्थित होकर संकल्प करो एवं फिर देखो वह सिद्ध होता है या नहीं ।

मैं जीव हूँ, मनुष्य हूँ, स्त्री-पुरुष हूँ, हिन्दु, मारवाड़ी, गुजराती, उड़िया, बंगाली, तेलुगु, पंजाबी, सिन्धी, बिहारी होकर संकल्प सिद्धि नहीं होगी ।

ध्यान द्वारा रोग मुक्ति

कल्पना करो कि तुम नदी के किनारे खड़े हो । तुम्हारे हाथ में एक सफेद कमल का पुष्प है । उस खिले कमल पुष्प में तुम अपने रोग, शोक, चिंता, भय, अशान्ति दरिद्रतादि को रखदो एवं अपने बाँये हाथ से उस कमल पुष्प की पंखुड़ियों को मिला दो और अब उस बंद कमल पुष्प को नदी की धारा में छोड़ दो ।

अब आप नदी की धारा में बहते हुए उस सफेद कमल पुष्प पर ध्यान करते रहें और देखते रहो कि वह सफेद कमल का पुष्प आपके समस्त रोग, शोक, चिन्ता, भय, अशांति, दरिद्रतादि को अपने हृदय में छिपाकर आपसे दूर होता चला जारहा है । धीरे-धीरे उस पुष्प का आकार छोटे रूप में दिखाई पड़ रहा है एवं अब वह आपकी दृष्टि से पूर्ण अदृश्य हो चुका है । अब आप नदी के तट पर पूर्ण स्वस्थ, शान्त, प्रसन्न मुद्रा में स्थित आपने आप को अनुभव कर रहे हैं ।

आज की शान्ति के लिये

- आज के दिन मैं परमात्मा, पिता-माता एवं सद्गुरु के उपकार के प्रति आभारी रहूँगा ।
- आज के दिन मैं प्रसन्नता पूर्वक रहूँगा ।
- आज के दिन मैं किसी पर क्रोध नहीं करूँगा ।
- आज के दिन मैं अपना कार्य इमानदारी से बिना रिश्वत लिये करूँगा ।
- आज मैं हत्या से प्राप्त वस्तु का उपयोग नहीं करूँगा ।
- आज मैं प्राणी मात्र के प्रति दया एवं प्रेम भाव से रहूँगा ।
- आज मैं शराब का सेवन नहीं करुँगा ।
- आज मैं प्रसाद के अतिरिक्त कुछ ग्रहण नहीं कुरँगा ।

Peace for Today

- Just for today, I will have the attitude of gratitude.
- Just for today, I will not be worry for any thing.
- Just for today, I will not be angry with anybody.
- Just for today, I will do all my works honestly.
- Just for today, I will show love & respect for all.
- Just for today, I will not use anything produced bu killing.
- Just for today, I will not drink wine.
- Just for today, I will take only *Prasad* offered to God.

प्रार्थना

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मामृतं गमय । – बृह. उप. १/३/२८

हे गुरु परमात्मनः ! आप हमें मिथ्या मार्गों, अन्ध विश्वासों, मताग्रहों तथा सम्प्रदायों से वैराग्य दिला, उनकी दासता से मुक्त कराकर, परमात्मा के सत्य मार्ग पर चलावें । अज्ञान अंधकार से हटा दिव्य ज्ञान प्रकाश में लावें, भेद बुद्धि से हटा सभी में एकात्म दर्शन करावें, तथा जन्म-मृत्यु-वाले देह से अंहकार छुड़ा अमृत आत्मा का निश्चय कराने की कृपा करें ।

मातृ देवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव
अतिथि देवो भव । सर्वान् देवो भव ।

– तैति.उप. १/११/२

हे गुरु परमात्मनः ! आप हमें माता-पिता, आचार्य, अतिथि तथा समस्त प्राणियों के प्रति आत्म बुद्धि करावें, ताकि हम उनको परमात्मा स्वरूप जान यथा शक्ति श्रद्धा भक्ति पूर्वक सेवा कर अपने मन को शुद्ध बना सकें । जिसके फल स्वरूप हम ज्ञान एवं मोक्ष के अधिकारी बन सकें ।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तुपलब्धये ।
वस्तु सिद्धिर्विचारेण न किंचित् कर्म कोटिभः ।।

विवेक चुड़ा- ११

कर्म से केवल चित्त शुद्धि मात्र ही होती है, मुक्ति नहीं । आत्म स्वरूप का बोध अर्थात् मुक्ति तो केवल सदगुरु कृपा से आत्म विचार द्वारा ही संभव होता है । कोटि-कोटि कर्मों के द्वारा भी बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं हो सकता ।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको
बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां
शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।

कठोप. २/२/१३

जो परमात्मा समस्त अनित्य, अचेतन दृश्य जगत् को नित्यता एवं चेतनता प्रदान करने वाला है । जो सूर्य की तरह जाति, भाषा, भोजन एवं गुण कर्म स्वभाव के भेद किये बिना सभी को चेतना, शक्ति प्रदान करता है, एवं उनके कर्मों के अनुसार वर्तमान शरीर, परिवार, सुख-दुःख, लाभ-हानि, मानापमान, यश-अपयश, विद्या-बल, धन, फल प्रदान करता है । उस ऐसे व्यापक समदर्शी परमात्मा को जो विवेकी जन समस्त जीवों एवं हृदय में आत्मा रूप से उसकी उपस्थिति अनुभव करते हैं, उन्हीं के मन में अखण्ड शान्ति एवं जीवनमुक्ति का अनुभव होता है; किन्तु जो इस अन्तर्यामी हृदय मन्दिर में स्थित परमात्मा को सबके आत्म स्वरूप न जान केवल किसी चित्र, मूर्ति आकार रूप में ही भगवान को मानते हुए प्रार्थना, पूजा, दान-ध्यान, व्रत उपवास, कीर्तन-भजन करते हैं और चैतन्य प्राणियों में विद्यमान परमात्मा का तिरस्कार, निंदा, गाली, चोरी, हत्या, छल-कपट करते हैं, असहाय निर्बल को दुःख पहुँचाकर उसके अश्रु प्रवाहित करते रहते हैं, पशु हत्या कर मांस मछली अंडा खाते रहते हैं, शराब, सिगरेट का सेवन करते रहते हैं ऐसे अज्ञानी कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी ।

मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचिन् ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।

बृह. उप. ४/४/१९

सदगुरु के उपदेश द्वारा शुद्ध मन से परमात्मा का अनुभव करना चाहिये । परमात्मा से पृथक् यहाँ किंचित् भी अन्य नहीं है । जैसे ग्राम से मकान, जंगल से वृक्ष, बगीचे से पौधा पृथक् नहीं है; इसी प्रकार

परमात्मा से आत्मा से पृथक् नहीं है । जो परमात्मा को आत्मा से फृथक् किसी अन्य लोक, अन्य रूप में उपासना करते हैं वे बारम्बार मृत्यु से मृत्यु को ही प्राप्त होते है ।

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।

मुण्डकोप. २/२/८

जीव कार्य–कारण स्वरूप परमब्रह्म को 'यह मैं हूँ' ऐसा जान लेने से 'मैं देह हूँ' इस प्रकार की अनादि अविद्या जन्य ग्रन्थि (अध्यास) छूट समस्त संशयों एवं भ्रांतियों से मुक्त हो जाता है । उसके समस्त अनादि संचित् कर्म ज्ञानाग्नि से जलकर भस्म हो जाते हैं । जिसके फल स्वरूप जीव अपने को ब्रह्म के साथ अभेद रूप से अनुभव करने लगता है ।

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ।।

श्वेताश्वतर उप. ३/१९

परमात्मा व्यक्ति नहीं शक्ति स्वरूप है । साकार नहीं बल्कि परमात्मा स्वयं निराकार है । जगन्नाथ मन्दिर की प्रतिमा इसका प्रतीक रुप है । इन परमात्म देव के, व्यक्ति रूप से अपने हाथ, पैर, मुख, आँख, कानादि इन्द्रियाँ नहीं है । लेकिन ये परमात्मा देव ही सब शरीरों में बैठ उन जीवों के मुख, नाक, कान, आँख एवं हाथ पैरों से सब क्रियाओं को कराते हैं ।

परमात्मा ज्ञान स्वरूप होने से सबको जानते हैं । किन्तु उन्हें कोई नहीं जानता है क्योंकि उनके अतिरिक्त सभी अनात्मा जड़ है । ज्ञानी पुरुष उसे महान, श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम आदि नामों से पुकारते हैं ।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

श्वेताश्वतरोप. ६/२३

समस्त दुःखों से छूटकारा एवं जीवनमुक्ति पाने की इच्छा से अज्ञान काल में जैसी श्रद्धा भक्ति परमात्मा के विग्रह के प्रति करते थे, वैसे ही श्रद्धा, भक्ति, किसी जीवित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु के प्रति करना चाहिये । ऐसे श्रद्धालु के मन में ही शास्त्रों के गुढ़ार्थ प्रकट होते हैं एवं वे जीवनमुक्त हो जाते हैं । किन्तु जो सद्‌गुरु के प्रति अश्रद्धा करते है उनमें दोष दर्शन करते हैं उन्हें कभी भी शान्ति नहीं मिल सकेगी ।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किंचित् कर्त्तव्यमस्ति चेत न स तत्त्ववित् ॥

जाबाल दर्शनोप. १/२३

'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार के विचार रूप अमृत के द्वारा जो जीवन्मुक्त ज्ञानी हुए है, उन्हें अपने मुक्ति रक्षार्थ अन्य किसी कर्म, उपासना आदि कर्मों को करते रहने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है । जो ब्रह्म निष्ठा के अलावा भी कुछ साधन कर्तव्य रूप मानते हैं वे आत्म निष्ठ नहीं है, बल्कि उन्हें अज्ञानी ही जानना चाहिये ।

'तस्य कार्यं न विद्यते' गीता :३/१८

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

केनोपनिषद् : १/४

वाणी के द्वारा जो कुछ भी व्यक्त किया जा सकता है तथा प्राकृत वाणी से बतलाये हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है । ब्रह्म तत्त्व वाणीसे सर्वदा अतीत है । उसके विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्तिके किसी अंशसे वाणी में प्रकाशित होनेकी – बोलनेकी शक्ति आयी है, जो वाणीका भी ज्ञाता, प्रेरक और प्रवर्त्तक है, वह ब्रह्म है ।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

केनोपनिषद् : १/५

बुद्धि और मनका जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा जानने में आ सकता है तथा प्राकृत मन–बुद्धिसे जाने हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर मन और बुद्धि से सर्वथा अतीत है । इसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो मन–बुद्धिका ज्ञाता, उनको मनन और निश्चय करने की शक्ति देनेवाला तथा मनन और निश्चय करनेमें नियुक्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्ति के किसी अंश से बुद्धि में निश्चय करने की और मन में मनन करने की सामर्थ्य आति है, वह ब्रह्म है ।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषिं पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

– केनोपनिषद् : १/६

चक्षु का जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा देखने– जानने में आ सकता है तथा प्राकृत आखोंसे देखे जानेवाले जिस पदार्थ समूह की उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर चक्षु आदि इन्द्रियों से सर्वथा अतीत है । उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्ति, प्रेरणासे चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ अपने–अपने विषयको प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ होती है, जो इनको जाननेवाला और अपने विषयों को जाननेमें प्रवृत्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशका यह प्रभाव है वह ब्रह्म है ।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदँ श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

– केनोपनिषद् : १/७

जो कुछ भी सुननेंमें आनेवाला पदार्थ है तथा प्राकृत कानोंसे सुने जाने वोले जिस वस्तु–समुदाय की उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका

वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर श्रोत्रेन्द्रिय से सर्वथा अतीत है । उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो श्रोत्र-इन्द्रियका ज्ञाता, प्रेरक और उसमें सुनने की शक्ति देने वाला है तथा जिसके शक्तिके किसी अंशसे श्रोत्र इन्द्रियों में शब्दों को ग्रहण करनेकी सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है ।

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणःप्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

– केनोपनिषद् : १/८

प्राणके द्वारा जो कोई भी चेष्टायुक्त की जानेवाली वस्तु है, तथा प्राकृत प्राणसे अनुप्राणित जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर उससे सर्वथा अतीत है । उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो प्राण का ज्ञाता, प्रेरक और उसमें शक्ति देनेवाला है, जिसकी शक्तिके किसी अंशको प्राप्त करके और जिसकी प्रेरणासे यह प्रधान प्राण सबको चेष्टायुक्त करनेमें सामर्थ होता है, वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ब्रह्म है ।

सारांश यह है कि प्राकृत मन तथा इन्द्रियोंसे जिन विषयोंकी उपलब्धि होती है, वे सभी प्राकृत होते हैं; अतएव उनको परब्रह्म परमेश्वर परात्पर पुरुषोत्तम का वास्तविक स्वरूप नहीं माना जा सकता । इसलिये उनकी उपासना भी परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना नहीं है । मन-बुद्धि आदिसे अतीत परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूपको सांकेतिक भाषामें समझानेके लिये ही यहाँ गुरुने इन सबके ज्ञाता, शक्तिप्रदाता, स्वामी, प्रेरक, प्रवर्तक, सर्वशक्तिमान्, नित्य, अप्राकृत परम तत्त्वको ब्रह्म बतलाया है । अतः अब इस हृदय स्थित बुद्धि के साक्षी आत्म ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है ।

गुरु महिमा

ॐ जय सद्गुरु स्वामी, प्रभु जय सद्गुरु स्वामी
मुमुक्षु जनों के संशय, तत्क्षण दूर करे ... ओम।।0।।

शरण ग्रहे को मुक्ति दिलावे,भव भ्रमण मिटे उनका ।
मल विक्षेप को दूर हटावे,अज्ञान कटे मन का...ओम ।।१।।

तुमही सर्वम् देव हमारे, चाह नहीं है किसकी ।
तुम बिन और न दूजा, पूजा करुँ में जिसकी...ओम ।।२।।

राग-द्वेष मन से छुड़वे अरु जन्म मरण फेरा ।
सत्यासत्य विवेक करा, अज्ञान हरा मेरा ... ओम ।।३।।

निज तन अहं बुद्धि मिटायी भये सचराचर वासी ।
तुम करुणा के सागर,प्रभु आनन्दघन रासी ... ओम ।।४।।

दया प्रेम अरु समते सिखायी प्रति सन्मुख जो मेरे ।
जो उपकार किया प्रभु मुझपर,किसविधी कहुँ तुमरे..ओम ।।५।।

तन मन धन से सेवा करुँ मन लाउँ नहीं कामा ।
शान्ता गुरुमुख आरत हो,पाओ आनन्द धामा... ओम ।।६।।

ओम जय सद्गुरु स्वामी, प्रभु जय सद्गुरु स्वामी
मुमुक्षु जनों के संशय, तत्क्षण दूर करे .... ॐ जय।।७।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरु र्विष्णु गुरु देवो महेश्वरः ।
गुरुदेव परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

ध्यान मूलं गुरोर्मुर्तिः पूजा मूलं गुरोः पदम् ।
मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरोः कृपा ।।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानान्जन शलाकया ।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

सर्व श्रुति शिरोरत्न विराजित पदाम्बुजः ।
वेदान्ताम्बुज सूर्यो यस्तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम् ।
नाद बिन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

मन्नाथः श्री जगन्नाथो मद्गुरुं श्री जगद्गुरुम् ।
ममात्मा सर्व भूतात्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरजंनम् ।
नित्य बोधं चिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम् ।।

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञान मुर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षी भूतम् ।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सदगुरु तं नमामि ।।

अखण्ड बोधाय शिष्य सन्ताप हारिणे ।
सच्चिदानन्द रूपाय निरजंनाय नमः ।।

अहो ! अहो ! श्री सत्गुरु, ज्ञानानंद अपार ।
हम जीवों पर कृपा कर कीना भव से पार ।।

स्व-स्वरूप अज्ञान से, पाया दुःख अनन्त ।
समझाया स्वरूप को , धन्य धन्य भगवन्त ।।

न गुरारेधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्व ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

नमन करुँ गुरु देव को, चरणन शीश नवाय ।
ऐसा चखाया ज्ञानरस,विषयन मन न लुभाया ।।

श्वेताम्बंर श्वेत विलेप पुष्प मुक्ता ।
विभुषितं मुदितं सुनेत्रम् ।
वामांग पीठ स्थित दिव्य शक्ति
मंद स्मित सांद्र कृपा निधानम् ।।

❖❖❖

निदिध्यासन

मनोबुद्ध्यहङ्कार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे ।
न च व्योम भूमि न तेजो न वायुः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

न च प्राण सञ्ज्ञों न वै पंचवायुः
न वा सप्तधातु र्न वा पंचकोशाः ।
न वाक्पाणि पादं न चोपस्थ पायुः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोहो
मदो नैव मे नैव मात्सर्य भावः ।
न धर्मों न चार्थो न कामो न मोक्षः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थो न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

न मे मृत्यु शङ्का न मे जाति भेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

अहं निर्विकल्पं निराकार रूपं
विभु व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम ।
सदा मे समत्वं न बन्धं न मुक्तिः
चिदानन्द रूपः शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षो
न ब्राह्मण्य क्षत्रीय न वैश्य शुद्रः ।
नाहं ब्रह्मचारी न ग्रही न वनस्थो
भिक्षुर्न चाहं शिवोऽहं–शिवोऽहम् ।।

◆◆◆

सर्व उपनिषद सारम्

न तत्र सुर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमाग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

मुण्डको : २/२/१०, कठोपः २/२/१५ श्वेताः ६/१४

यदा चर्मवद आकाशं विष्टयिश्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ।।

श्वेता : ६/२०

मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धाभिमान्यपि ।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सागति र्भवेत ।।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

श्वेताः ६/२३

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
श्रृणवन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्यलब्धा
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।

कठ. उप. २/७

यस्यामतं तस्य मतं मतं यत्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञानमविजानताम् ।।

केनोप. : २/३

ब्रह्म वेदममृतं पुरुस्ताद्ब्रह्म, पश्चाद्ब्रह्म दक्षिण तश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वामिदं वरिष्ठम ।।

२/२/११ : मुण्डक उप.

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति
न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् ।। बृहद.उप.१/४/१०

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।
यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ।।

छान्दोग्य उप.७/२३/१

न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं श्रुणुयान्न
मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञाते र्विज्ञातारं विजानीथाः ।
एषत् आत्मा सर्वान्तरोऽतेऽन्यपदर्तम्

बृहदा. उप.३/४/२

नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्यो
ऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽततोऽस्ति विज्ञातेष त आत्मा
ऽन्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम् । ३/७/२३ बृहद.उप.

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्ट्रश्रुतंश्रोत्रमतं मन्त्र
विज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति
श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रे
तस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ।

३/८/११ बृहद.उप.

ज्ञात्वादेवं सर्वपाशपहानिः क्षीणै क्लेशैर्जन्ममृत्यु प्रहणि ।

१/११ श्वेता .उप.

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

श्वेत. उप. ३/८

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।

३/१६ : श्वेत. उप.

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।

श्वेताश्वतर उप. ३/१९

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

श्वेताश्वतर उप. ४/६

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत्प्रकाशते ।
तत्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्व बन्धैः प्रमुच्यते ।।

कैवल्य उप. १७

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ।।

कैवल्य उप. १९

उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यमं शास्त्र चिन्तनम् ।
अधमा मन्त्र चिन्ता च तीर्थ भ्रान्त्यधमाधमा ।।

मैत्रेय्यु. उप.२/२१

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः ।
स्नानं मनोमल त्यागः शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।।

मैत्रेय्यु. उप.२/२

नाहं देहो जन्म मृत्यु कुतो में नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाहं चेतः शोक मोहौ कुतो में नाहं कर्ता बन्ध मोक्षौ कुतो में ।।

६ : सर्वसारोपनिषत्

श्रवणं तु गुरौः पूर्वं मननं तदनन्तरम् ।
निदिध्यासनमित्येत्पूर्णबोधस्य कारणम् ।

२/१३ : शुक रहस्य उप.

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्या पश्येत ब्रह्ममयं जगत् ।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ।।

अपरोक्ष अ. ११६/ तेजविन्दु उप. १/२९

नापुत्राय प्रदातव्यं नाशिष्याय कदाचन ।
गुरुदेवाय भक्ताय नित्यं भक्तिपराय च ।।

ब्रह्मविद्या उप. ४७

देहो देवालयः प्रोक्तः सजीवः केवलःशिवः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत् ।।

१० : स्कन्दोपनिषद

अविचार कृतो बन्धो विचारों–मोक्षो भवति ।
तस्मात्सदा विचारयेत् द्रष्टा साक्षीआत्माऽहम् ।।

पैङ्गलउप.२ / गीता ३।१७

ममेति बध्यते जन्तु निर्ममेति विमुच्यते ।।

पैङ्गल उप.४/२६

नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो ज्ञान लक्षणम् ।
नाहं ब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिर्नजायते ।

पैङ्गल उप.४/२८

'यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र परं पदम् ।' पैङ्गल उप. ४/२९

दुर्लभो विषय त्योगो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम् ।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ।।

महो उप. ४/७७

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।।

२।१८ संन्यास उप.

ज्ञानेनैव हि संसार विनाशो नैव कर्मणा ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथा विधिः ।।

३५ रुद्र हृदय.उप.

अत्यन्त मलिनो देहो देही चात्यन्त निर्मलः ।
अभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते ।।

१/२१ : जाबाल. दर्शन उप.

ज्ञानं शौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः ।
स मूढः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्ठं गृह्णाति सुव्रत ।।

१/२२ : जाबालदर्शन उप.

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृत कृतस्य योगिनः ।
न चास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्

१/२३ : जाबालदर्शन उप.

आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत् ।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते ।।

४/५० जाबालदर्शन उप.

तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाण के सदा ।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ।।

४/५७ जाबालदर्शन उप.

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः ।
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः ।।

४/५९ जाबाल दर्शन उप.

ज्ञानयोग पराणां तु पाद प्रक्षालितं जलम् ।
भावशुद्ध्यर्थमज्ञानां तत्तीर्थ मुनि पुङ्गव ।।

४/५६ जाबाल दर्शन उप.

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पञ्चकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।।

सरस्वती रहस्य उप. २४

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम् ।।

३१. सरस्वती. उप.

देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञान बाधकम् ।
आत्मन्येव भवेत् यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते ।।

२/१५ बराहोपनिषत्

न नभो घट योगेन सुरागन्धेन लिप्यते ।
तथात्मोपाधि योगेन तद्धर्मो नैव लिप्यते ।।

५२ : अध्यात्म उप.

घटावभासको भानुर्घट नाशे न नश्यति ।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति ।।

१८ : आत्म प्रबोध

प्रमादो ब्रह्म निष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन ।
प्रमादो मृत्युरित्याहुर्विद्यायां ब्रह्म वादिनः ।।

१४ : अध्यात्म उप.

अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते ।।

१६ : योग तत्त्वोपनिषत्

तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति

५० : ध्यान बिन्दु उप.

पाषाण लोह मणिमृण्मय विग्रहेषु,
पूजा पुनर्जननभोग करी मुमुक्षोः ।
तस्माद्यातिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात्,
बाह्यार्चनं परिहरेदपुनर्भवाय ।।

२/२६ : मैत्रैय्युपनिषद्

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो, मन्तव्यो,
निदिध्यासितव्यो आत्मनि श्वल्वरे दृष्टे श्रुते
विज्ञान इदं सर्वं विदितम्

वृहदा . ४/५/६

न हि द्रष्टुदृष्टे र्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्

अविनाशी होने के कारण द्रष्टा की दृष्यि का कभी लोप नहीं होता है ।

न वा अरे पतयुकामाय पतिः प्रियो भवन्त्यात्मनस्तु का माय पतिः प्रियो भवति ।
न वा अरे जायाये का माय जाया प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कायाय जया क्रिया भवति ।
न वा अरे पुत्राणां का माय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ।
न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ।
न वा अरे वाहन कामाय बाहन प्रियं भवन्त्यात्मनस्तु का माय वाहन प्रियं भवति ।
न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रियं भवन्त्यात्मनस्तु का माय पशवः प्रिय भवति ।
न वा अरे ब्राह्मणः कामाय ब्राह्मणः प्रिय भवन्त्यात्मनस्तु कामाय ब्राह्मणःप्रिय भवति ।
न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय देवः प्रिय भवन्ति ।
न वा अरे वेदानां का माय वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवः प्रिय भवन्ति ।
न वा अरे भूतानां कामाया भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति ।
न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

बृहदा. उप. ४/५/६

देवताओं का पशु

अथ योऽन्यं देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स देव यथा पशुरेवं । वृहदा. उप. १/४/१०

इस हृदय स्थित बुद्धि के साक्षी रूप सत्य ब्रह्मको सद्‌गुरु की कृपा से 'वह ब्रह्म मैं हूँ' इस प्रकार अभी भी जो जान लेता है वह ज्ञानी इस विज्ञान से सर्वरूप हो जाता है । ऐसा तत्त्ववेत्ता के पराभव करने के लिये द्योतनशील देवता भी समर्थ नहीं होते हैं । क्येंकि वह तत्त्व ज्ञानी इस भूतादि देवताओंका भी आत्मा हो जाता है । यह आराध्य देव भिन्न है और मैं उपासक इससे भिन्न हूँ इस प्रकार से जो अपने को भिन्न समझ मर उपासना करता है वह अज्ञानी परमार्थ तत्त्व को नहीं जानता है ।

जैसे लोग मे भार ढोने वाले (भारवाही) पशु होता है वैसे वे भेदभक्ति करने वाले लोग देवताओं के पशु बने रहते हैं । जैसे लोक में बहुत से पशु अपने जीविका को प्रदान करने वाले स्वामी का भार वहन करते रहते हैं । वैसे ही हविष्यान्न प्रादन करके एक एक मनुष्य भी देवताओं की सेवा, पूजा, अर्चना करता रहता है । जैसे किसान के अनेक पशुओं में से एक का अपहरण होने पर अप्रिय लगता है । फिर भला अेनक पशुओं का अपहरण होते पर तो कहना ही क्या ? इसी प्रकार देवताओं को भी यह बात सर्वथा प्रिय नहीं कि कोई वेदान्त केशरी इन हमारे पूजकों को, भक्तों को तत्त्व ज्ञानदेकर हमारे से दूर भगा न ले जावे । अर्थात् यह अज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान ग्रहण करें ।

इन्द्रियनसुर न ज्ञान सुहाई ।
विषय भोग पर प्रीति सदाई ।।

अन्तवत्तु फलं तेषा तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देषान्देवयजो यान्ति भद्भक्ता यान्ति ममापि ।।

गीता : ८/२३

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यानि पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्यजिनोऽपिमाम् ।।

गीता : ९/२५

ये दवताओं को पूजने वाले देवताओं के लोक को प्राप्त होते हैं । पितरों को पूजने वाले पितृलोक को प्राप्त होते हैं । भूतों को पूजने वाले भूत योनि को प्राप्त होते हैं और पाषाण, धातु, चित्र, मूर्ति, जलादि को पूजने वाले बुद्धिहीन मनुष्य पुनः दुख रूप संसार को ही प्राप्त होते हैं । क्योंकि नाशवान देवताओं से मिलने वाला फल नाशवान ही होता है । किन्तु मुझ आत्मा की उपासना करने वाला ज्ञानी भक्त मुझको ही प्राप्त होता है, उनका पूनर्जन्म नहीं होता है ।

मैं कौन हूँ

जो सुख नित्य प्रकाश विभु,
नाम रूप आधार ।
मति न लखे जो मति को लखे,
सो मैं शुद्ध अपार ।।

अवधि अपार स्वरूप मम,
लहरी विष्णु महेश ।
विधि,रवि, चन्द्र, वरुण,यम
शक्ति, धनेश, गणेश ।।

जिस कृपालु सर्वज्ञ का,
हिय धारत मुनि ध्यान ।
उसका होत उपाधि ते,
मुझमें मिथ्या भान ।।

दिखता जाने बिन जगत,
जैसे रस्सी में साँप ।
नशे भुजंग जग ज्योंहि लहे,
सोऽहम् आपे आप ।।

बोध चाहि जाको सुकृति,
भजत राम निष्काम ।
सो मेरी है आत्मा,
किसको करूँ प्रणाम ।।

◆◆◆

साक्षी ध्यान

अब हम लोग मन की एकाग्रता हेतु सहज साक्षी ध्यान में उतरेंगे । सभी लोग सरल सीधे सुविधानुसार बैठ जावें । शरीर के किसी भी अंग पर दबाव न डालें । अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर या गोद में रख लें । कमर, गर्दन सीधी रखें, अब आँखों पर बिना दबाव डाले सरलता से पलक रूपी पर्दे गिरा दें अर्थात् नेत्र बंद कर लें । यथा चेष्टा शरीर को स्थिर रखने का प्रयास करें । यदि सुविधानुसार किसी अंग में परिवर्तन करें तो उसके भी आप साक्षी रहें ।

चंचल मन को शान्त करने के लिये, विकारी मन को निर्विकार करने हेतु, बहिर्मुख मन को अन्तर्मुखी करने हेतु अपने सहज श्वाँस गति के साथ मन को जोड़ दें । श्वाँस जैसा भीतर बाहर हो रहा है, उसे उसी प्रकर होने दे, उसकी गति में कोई परिवर्तन अथवा भीतर-बाहर रुकावट न करें । यह श्वाँस-प्रश्वाँस गति सभी प्राणियों में न्युनाधिक रूप से 21,600 बार सदा होती रहती है ।

कभी यह श्वाँस गति सामान्य, मन्द एवं मेहनती कार्य के अनुरूप तीव्र गति से बहने लगती है । कभी-कभी किसी रोग में श्वाँस-प्रश्वाँस में कष्ट का भी अनुभव करते होगें । जैसी भी श्वाँस चल रही है, उसके प्रति आप पूर्ण सजग रहें । कोई श्वाँस आपके बिना जानकारी के न बहने पावे । इधर मेरे द्वारा दिये जा रहे आदेश-निर्देश पर भी ध्यान देते रहें, मेरी कोई बात आपके श्रवण बिना न निकल जावे ।

देखिये ! आपको यह श्वाँसों का ध्यान करने का अभ्यास नहीं है इसलिये कुछ अटपटा-सा लगेगा, किन्तु एकाग्रता से श्वाँस की गति

देखेंगे तो लय बद्ध सुनाई पड़ेगी । श्वाँस गहरी लम्बी प्राकृतिक ढंग से चलने दें, जल्दी लेकर जल्दी छोड़ने का क्रम न बनावें । हमें श्वाँसों की माला या गिनती नहीं करना है । केवल यह देखते रहें कि श्वाँस कब भीतर की ओर एवं कितने गहरे में जाती है एवं कब बाहर की ओर एवं कितनी दूर तक जाती है । आप जब बहुत विवेक पूर्वक देखने की कोशीश करेंगे तो श्वाँस भीतर से बाहर की ओर एवं बाहर से भीतर की ओर लौटती है वह क्षण भी आपको स्पष्ट ज्ञात होने लगेगा ।

इतना होश रखें कि आप श्वाँस नहीं है श्वाँसों के द्रष्टा, साक्षी आत्मा है । श्वाँस वायु का विकार है, जो भीतर-बाहर होता रहता है । जब तक मन श्वाँस के साथ जुड़ा रहेगा वह बाहर कहीं भी नहीं जा सकेगा ।

ध्यान पूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि श्वाँसों का आवागमन दोनों नासारन्ध्र में सदा समान रूप से नहीं होता है । कभी दाँया स्वर सूर्य नाड़ी मुख्य, तो कभी बाँया स्वर चन्द्र नाड़ी मुख्य रहता है । कभी दोनों नासारन्ध्र में समान रूप से श्वाँस बहती हुई अनुभव करेंगे । परन्तु यह क्रम बहुत कम समय के लिये रहता है जो मन की एकाग्रता प्रसन्नता का क्षण होता है । ऐसे क्षणों में मस्तिष्क के समस्त तनाव स्वतः शान्त हो जाते हैं ।

हमारे नासारन्ध्र में कब किस ओर श्वाँस का मुख्य प्रवाह एवं कब किस ओर गौण प्रवाह हो रहा है इसे जानने हेतु दोनों नासारन्ध्र में से किसी एक नासा छिद्र को अंगुली द्वारा बन्द कर लें एवं दूसरी तरफ से श्वाँस निकलने दें, और विचारें कि श्वाँस गति सरल है या कठिन ? फिर इसी प्रकार दूसरी तरफ के छिद्र को बन्द करें एवं प्रथम ओर से श्वाँस बहने दें एवं विचार करें कि दाँये स्वर से ठीक बहती है या बाँये स्वर से ? जिस तरफ से श्वाँस सरल से बहे, उस समय का वही मुख्य स्वर है एवं दूसरे ओर का गौण स्वर है ।

उत्तम स्वास्थ्य के लिये दाँये स्वर के चलते समय भोजन एवं बाँये स्वर के चलते समय पानी ग्रहण करें एवं रात्रि को भी बाँये करवट सोने का अभ्यास करें । उच्चरक्त चाप (High Blood Pressure) वाले दायें करवट ही सोवें ।

जब श्वाँस की गति बाँये ओर चल रही होती है तब शरीर में आलस्य, सुस्ती, थकन, एवं जब दाँये ओर से होती है तब शरीर में स्फूर्ति, प्रवृत्ति एवं उत्तेजना झलकती है ।

अब सभी लोग अपने श्रोत्र को नासारन्ध्र पर ले आवे अर्थात् अब अपना ध्यान श्वाँसों के साथ उठने वाली ध्वनी में लगावें । जब श्वाँस भीतर की ओर जाती है तब मन मे 'सो' 'SO' को दोहराओ एवं बाहर आते समय 'हम्' 'HAM' को दोहराओ इस प्रकार श्वाँस-प्रश्वाँस के योग से ''**सोऽहम्**'' महावाक्य का अनुभव करेंगे । यह सहज अजपा गायत्री सभी मनुष्यों मे होती रहती है, किन्तु अज्ञानी व्यर्थ में बाहरी शब्द में रस रख जीवन नष्ट करते रहते है एवं ज्ञानी '**सोऽहम्**' महावाक्य के लक्ष्यार्थ, अपने को देह, इन्द्रिय, प्राण, तथा मनादी का साक्षी आत्मा जान, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है । अर्थात् ''यह देह मैं नहीं हूँ'' बल्कि ''वह परमात्मा मैं हूं'' ''सोऽहम्'' ।

अब मेरे साथ सभी ॐ की ध्वनि करेंगे तत्पश्चात् आँखे खोलेंगे ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

स्वरूप चिन्तन

सर्व प्रथम किसी अनुकूल आसन में बैठ जावें । अपने दोनों हाथोंके अंगुठे से अपनी चौथी अंगुली मिलादें । कुछ समय इसी शान्त मुद्रा में स्थिर होकर बैठें और अपने सहज श्वाँसों के आने जाने को देखते रहें ।

यदि स्वस्थ व्यक्ति हो तो खाली पेट प्रातः काल साथ में प्राणायम भी करे । दोनों नासिका छिद्रों से धीरे-धीरे श्वाँस को अन्दर खींचे और फिर उससे दुगने समय में बाहर निकाले । जैसे श्वाँस लेते समय 1 से 4 तक गिनती पूरी होती है तो श्वाँस छोड़ने में 1 से 8 तक गिनती चलाना चाहिये । कुछ दिनों के अभ्यास के बाद भीतर बाहर रोकने का भी अभ्यास करे । पर ध्यान रहे श्वाँस उतने समय भीतर या बाहर रोके, जिससे श्वाँस लेने मे जल्दी न करना पड़े । उस समय ध्यान श्वाँस पर ही रहना चाहिये । अब बाहर के शब्दों की ओर से मन को हटा अन्दर श्वाँसों के साथ होने वाले अजपा ''सोऽहम्'' जाप को सुनना चाहिये ।

हकारेण बहि र्याति सकारेण विशेत पुनः ।
हँस हँस इत्यमुं मंत्रं, जीवो जपति सर्वदाः ।।

श्वाँस जब अन्दर आता है तब 'सो' शब्द होता है और जब श्वाँस बाहर निकलता है तब 'हम्' (यह हम वास्तव में ''अहम्'' है) की आवाज अनुभव में आती है । इस प्रकार सभी प्राणीयों में जन्म से मृत्यु के अन्तिम क्षण तक इस 'सोऽहम्' अजपा गायत्री-महामंत्र का स्वभाविक रूप से जाप होता रहता है ।

साधक अजपा जाप में मन को लगाकर फिर उसके अर्थ का भी चिन्तन करे । 'सो'= सः अर्थात् सर्वत्र अस्ति, भाति व प्रिय रूप से व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म और 'हम्'= अर्थात् इस देह में विद्यमान सब अवस्था, परिवर्तनों, विचार, घटनाओं का प्रकाशक साक्षी द्रष्टा मैं चैतन्यात्मा ।

'सोऽहम्' मंत्र का अर्थ हुआ मैं साक्षी सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ । इस प्रकार 'सोऽहम्' अजपा महामंत्र के अर्थका चिन्तन करके फिर यह भावना करे कि यह महामंत्र का स्पन्दन प्राणों के द्वारा हो रहा है, मैं प्राणों का एवं प्राणों के द्वारा होने वाले 'सोऽहम्' जाप से भिन्न साक्षी द्रष्टा आत्मा हूँ । मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ ऐसा चिन्तन करे ।

आँख खोल कर सामने किसी वस्तु को देखते हुए चिन्तन करे । जैसे कि यह ॐ चित्र मेरा दृश्य है मैं ॐ चित्र से भिन्न ॐ चित्र का साक्षी हूँ ।

पंच भूतों का चिन्तन करे :–

मैं पृथ्वी नहीं हूँ । पृथ्वी से भिन्न पृथ्वी का साक्षी हूँ । मैं जल नहीं हूँ । जल से भिन्न जल का साक्षी हूँ । मैं तेज नही हूँ । मैं तेज से भिन्न तेज का साक्षी हूँ । मैं वायु नहीं, वायु से भिन्न वायु का साक्षी हूँ । मैं आकाश नहीं, आकाश से भिन्न आकाश का साक्षी हूँ ।

मैं पंच भूत नहीं हूँ, इसलिए उनसे बना यह लड़का या लड़की स्त्री या पुरुष शरीर नहीं हूँ ।

जब मैं शरीर नहीं तो, जन्मना, बढ़ना, रहना, युवा होना, वृद्ध होना तथा मरना यह मेरा धर्म नहीं है । यह छह विकार देह हैं । मैं निर्विकार आत्मा हूँ ।

जब मैं शरीर नहीं, तो हिन्दु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्रादि जाति, वर्ण मेरा नहीं है । यह सब देह में कल्पित है ।

जब मैं शरीर नहीं तब उड़िया, बंगाली, पंजाबी, सिन्धी, बिहारी, तेलगु, मारवाड़ी, गुजराती आदि प्रान्तियता भी मुझ में नहीं है । यह भेद भी देह में आरोपित की गई है ।

जब मैं शरीर नहीं तो ब्रह्मचारी, गृहस्थी आदि चारों आश्रमों का अभिमान भी मुझमें नहीं है । यह भेद भी कल्पित हुए है ।

जब मैं शरीर नहीं तो लम्बा, नाटा, दुर्बल, मोटा, गोरा, काला परिणाम भी मेरा नहीं है । मैं तो निरवयव आत्मा हूँ ।

जब मैं शरीर नहीं तो पिता-माता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि उपाधि भी मुझमें नहीं है । क्योंकि मैं तो सजातिय, विजातिय, स्वगत भेद शून्य असंगात्मा हूँ । '**असंगोह्ययं पुरुषः**' ।

जब मैं शरीर नहीं तब मुझे न कोई देख सकता है, न छु सकता है, न काट सकता है, न जला सकता है, न मार सकता है । न कोई सम्मान मुझे दे सकता है, न कोई मेरा अपमान कर सकता है ।

जब में शरीर नहीं तो पैर से सिर तक मेरा कोई अंग नहीं है ।

अब नाम लेकर अपने शरीर का चिन्तन करे कि मैं 'निरंजन' नहीं हूँ । यह नाम 'निरंजन' तो मेरे परिचायक शरीर का है । मैं इस निरंजन नाम रूप शरीर से भिन्न साक्षी आत्मा हूँ ।

प्रिय पदार्थ का चिन्तन करें :-

जैसे कार मैं नहीं, यह मेरी नहीं, यह मेरी दृश्य है, मैं इससे पृथक् इसका द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ ।

इसी प्रकार घड़ी, टी.वी, अलंकारों, कपड़े, मकान, सम्बन्धियों का चिन्तन करें कि यह सब मैं नहीं हूँ मैं इस सबका साक्षी इनसे भिन्न हूँ ।

दस इन्द्रियों का चिन्तन करें :-

पांच ज्ञानेन्द्रिय : श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण,

पांच कर्मेन्द्रिय : वाक् , पाणि, पाद, उपस्थ, और गुदा ।

जैसे मैं कान नहीं, कान से भिन्न द्रष्टा, साक्षी आत्मा हूँ । मैं आंख नहीं, आंख से भिन्न द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ । इसी प्रकार सभी इन्द्रियों का नाम लेकर विवेक जाग्रत करें ।

मन का चिन्तन करें :-

मैं मन नहीं हूँ, मन मेरा दृश्य है । मैं मन का द्रष्टा साक्षी आत्मा मन से भिन्न हूँ । मन एकाग्र रहे या चचंल रहे । मन मुढ़ता को प्राप्त हो या मुर्च्छित हो । सुखी हो या दुःखी । पाप वासना युक्त हो या धर्म वासना से युक्त हो मैं उसे जानता रहता हूँ । उसके धर्म मुझे स्पर्श नहीं करते । इस प्रकार मन की हर अवस्था का मैं साक्षी आत्मा, मन से भिन्न हूँ ।

बुद्धि का चिन्तन करें :-

निश्चय करना अथवा निश्चय न करपाना, समझना या न समझपाना, याद रखना या भूल जाना, धर्म बुद्धि का है । मैं बुद्धि की इन जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुर्छा, ध्यान, समाधि सभी अवस्थाओं का जानने वाला साक्षी आत्मा बुद्धि से भिन्न हूँ ।

सन्धि का चिन्तन करे :-

जब एक वृत्ति (विचार) के बाद दूसरी वृत्ति उत्पन्न होती है, तब दोनों वृतियों के बीच में एक खाली स्थान, सन्धि अवस्था होती है । उस खाली अवस्था को बढ़ाना चाहिये । उस समय साक्षी अपने शुद्ध स्वरूप मैं भासता है । शेष समय साक्षी वृत्ति अर्थात् आकृति सहित प्रतीत होता है । सन्धि काल में साक्षी आकृति रहित प्रतीत होता है । जैसे फिल्म सहित पर्दे पर प्रकाश एवं फिल्म रहित पर्दे पर प्रकाश । यह प्रकाश की दो अवस्थाएँ होती है । वृत्ति सहित साक्षी, फिल्म सहित प्रकाश की तरह है । वृत्ति रहित साक्षी आत्मा फिल्म रहित शुद्ध प्रकाश की तरह है । आकृति रहित भासमानता ही शुद्ध चैतन्य-स्वरूप साक्षी

है । सो वह साक्षी- मैं हूँ ऐसी भावना करे ।

समाधि चिन्तन :-

यह अभ्यास करते-करते इतना तल्लीन हो जाय कि मैं पन ही भूल जाय केवल साक्षी वृत्ति ही रह जाय, उस अवस्था को विचार समाधि, सविकल्प समाधि कहते हैं ।

सच्चिदानन्द स्वरूप की भावना:-

इस समाधि अवस्था में जो निर्विषय आनन्द भासता है वह आनन्द स्वयं-प्रकाश एवं सत है और वही आनन्द मेरा स्वरूप है । इसीलिए मैं सत-चित्-आनन्द स्वरूप हूँ ऐसी भावना करे ।

ब्रह्म चिन्तन करे :-

जो सत्, चित् आनन्द स्वरूप मैं हूँ वह, केवल इस शरीर मैं ही सीमित नहीं हूँ, बल्कि सारे ब्रह्माण्ड में अस्ति-भाति-प्रिय रूप से जगमगा रहा हूँ । जहाँ-जहाँ वृत्ति जावे, वहाँ-वहाँ उस-उस पदार्थ के नाम, रूप को मन से हटाकर उस में स्थित अधिष्ठान अस्ति, भति, प्रिय ब्रह्म मैं ही हूँ अर्थात् जो मैं सत्, चित्, आनन्द ब्रह्म इस देह में व्यापक हूँ यही मैं अस्ति, भाति, प्रिय रूप व्यापक ब्रह्म सर्व ब्रह्माण्डों मैं फेला हुआ हूँ । तथा जो अस्थि, भाति, प्रिय रूप व्यापक ब्रह्म सर्व ब्रह्माण्डों में विद्यमान है वही मैं साक्षी, सच्चिदानन्द ब्रह्म इस शरीर में व्याप्त हूँ । जब ऐसा चिन्तन स्वाभाविक होने लगे तब उसे सहज समाधि कहते हैं । यही परमावस्था है । और यही कैवल्य मोक्ष ज्ञानियों का है ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ओंकार, आत्मा और ब्रह्म का अहंग्रह ध्यान

अहंग्रह ध्यान को ही लय चिन्तन कहते हैं । लय चिंतन का यह नियम है की कार्य-कारण की अभिन्नता होने के कारण कार्य को उसके उपादान कारण रूप से देखना । जैसे अंलकार अपने कारण स्वर्ण से भिन्न नहीं बल्कि स्वर्ण रूप ही है । इसी प्रकार समष्टि ब्रह्माण्ड का कारण ब्रह्म होने से ब्रह्माण्ड ब्रह्म से भिन्न नहीं है । परन्तु ब्रह्मरूप ही है । जब सारा जगत् ही ब्रह्म रूप है तब मैं जगत् से अभिन्न होने के कारण, मैं भी ब्रह्म ही हूँ । इस दृष्टि से जो ब्रह्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की जान है वह मुझसे भिन्न नहीं है तो मैं भी वह ब्रह्म स्वरूप हूँ इस प्रकार के ध्यान को अहंग्रह ध्यान कहते हैं ।

ओंकार एवं जीव के चार पादों की अभिन्नता :-

ओम के चार पाद	**अ**	**उ**	**म**	और अमात्र
जीव के चार पाद	**विश्व**	**तैजस**	**प्राग**	और साक्षी
ब्रह्म के चार पाद	**विराट्**	**हिरण्यगर्भ**	**ईश्वर**	और परमात्मा

अ= विश्व अभिन्न विराट् । **उ**= तैजस-अभिन्न हिरण्यगर्भ, **म**= पाज्ञ अभिन्न ईश्वर । **अमात्र** = जीव साक्षी आत्मा अभिन्न ईश्वर साक्षी परमात्मा ।

इस प्रकार प्रथम ओंकार, आत्मा एवं परमात्मा की अभिन्नता का चिन्तन कर फिर लय चिन्तन द्वारा सबका सच्चिदानन्द-स्वरूप

अमात्र रूप ब्रह्म से अभेद करके अहंग्रह ध्यान करना चाहिये ।

जैसे विश्व अभिन्न विराट्, तैजस अभिन्न हिरण्यगर्भ से भिन्न नहीं परन्तु हिरण्यगर्भ–स्वरूप है । वह हिरण्यगर्भ, प्राज्ञ अभिन्न ईश्वर से भिन्न नहीं परन्तु ईश्वर स्वरूप है । वह ईश्वर, जीव साक्षी आत्मा–अभिन्न – ईश्वर साक्षी परब्रह्म से भिन्न नहीं परन्तु ब्रह्म स्वरूप है । वह शुद्ध ब्रह्म मैं हूँ अर्थात् मेरा वास्तविक स्वरूप है । इस प्रकार ओम् द्वारा निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये ।

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

मुण्डकोप: १/२/१२

अनित्य यज्ञादि कर्म से मिलने वाले चींटीसे लेकर ब्रह्मा पर्यन्त समस्त लोक, पद एवं भोग को अनित्य जान उनकी ओर से उदासिन हो जाना चाहिये । क्योंकि कर्मोपासना रूप अनित्य साधनों द्वारा नित्य आत्म पदार्थ रूप मोक्ष नहीं मिल सकता ।

अतः उस नित्य स्वस्वरूप प्राप्त ब्रह्म का साक्षात् करने के लिये आश्रम उपयोगी समिधा लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाना चाहिये ।

लय चिन्तन

जैसे मृतिका के कार्य रूप घट के भीतर बाहर मृतिका ही है तथा स्वर्ण के कार्य रूप समस्त अलंकार स्वर्ण मात्र ही है भिन्न नहीं है । वैसे ही समस्त प्रपंच का मूल कारण ईश्वर है, इसलिये सभी कार्य प्रपंच ईश्वर स्वरूप से भिन्न नहीं हो सकते अतएव वह ईश्वर मैं हूँ, इस तरह लय चिन्तन करना चाहिये । जिसका विस्तार पूर्वक क्रम इस प्रकार है –

सम्पूर्ण स्थूल ब्रह्माण्ड पंचीकृत भूतों का कार्य है । वहाँ जो पृथ्वी का कार्य है वह पृथ्वी से भिन्न नहीं बल्कि पृथ्वी स्वरूप है, जल का कार्य जल स्वरूप है, तेज का कार्य तेज स्वरूप है, वायु का कार्य वायु स्वरूप है और आकाश का कार्य आकाश स्वरूप है । इस प्रकार सम्पूर्ण स्थूल ब्रह्माण्ड पंचीकृत पंच महाभूतों का कार्य होने से पंच भूत स्वरूप है ।

पंचीकृत भूत भी अपंचीकृत भूतों के कार्य होने से अपंचीकृत भूत स्वरूप ही (पंचीकृत भूत) है । इनमें भिन्नता नहीं है । तथा अन्तःकरण आदि सूक्ष्म सृष्टि भी अपंचीकृत भूतों का कार्य होने से अपंचीकृत भूत स्वरूप ही है ।

अन्तःकरण सब भूतों के सत्वगुणों कार्य होने के कारण सत्वगुण स्वरूप ही है भिन्न नहीं है । तथा पंच प्राण सब अपंचीकृत पंच भूतों के रजोगुण का कार्य होने से रजोगुण स्वरूप ही है । श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण पांच भूतों के स्वतन्त्र सात्विक अंश का कार्य होने से पांचों ज्ञानेन्द्रिया पंच अपंचीकृत भूत के सात्विक अंश स्वरूप ही है, भिन्न नहीं है ।

इसी प्रकार अपंचीकृत पंच भूतों के स्वतन्त्र रजोगुण के कार्य रूप पंच कर्मेन्द्रियाँ–वाक्, पाणी, पाद, उपस्थ तथा गुदा अपने कारण रूप पंच अपंचीकृत भूत स्वरूप ही है । उनसे भिन्न नहीं है । इस प्रकार सम्पूर्ण सूक्ष्म सृष्टि अपंचीकृत पंच भूत स्वरूप ही है ।

उपरोक्त चिन्तन करके अपंचीकृत भूतों का भी लय चिन्तन करे– पृथ्वी जल का कार्य होने से जल स्वरूप है, जल तेज का कार्य होने से तेज स्वरूप है, तेज वायु का कार्य होने से वायु स्वरूप है, वायु आकाश का कार्य होने से आकाश स्वरूप है । तमोगुण प्रधान प्रकृति का कार्य आकाश प्रकृति स्वरूप है । प्रकृति, प्रधान, माया, अविद्या, अज्ञान, शक्ति यह सब नाम एक ही माया के हैं । इसलिये प्रकृति माया स्वरूप है ।

यह माया चेतन ब्रह्म की शक्ति है जैसे पुरुषकी समार्थ्य रूप शक्ति पुरुष से भिन्न नहीं है, वैसे ही चेतन की प्रधान रूप शक्ति भी चेतन ब्रह्म से भिन्न नहीं है ।

इस प्रकार सम्पूर्ण अनात्म पदार्थों का ब्रह्म से लय चिन्तन करके "**वह अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ** " ऐसा निश्चय करे ।

जिसे श्रेष्ठ आचार्य के द्वारा वेदान्त महावाक्यों का उपदेश सुनने से यह ज्ञान होता है कि मैं कर्ता–भोक्ता नहीं वरन् निष्क्रिय असंग ब्रह्म स्वरूप हूँ उसके लिये विश्व प्रपंच न था, न है , न होगा । ज्ञानी पुरुष मन के धर्म सुख–दुःख की प्राप्ति या निवृत्ति की कुछ भी कामना नहीं करते । ज्ञानी पुरुष सदगुरु कृपा से अपने को देह संघात् एवं उनके गुण धर्मों एवं कर्मों से पृथक् साक्षी स्वरूप ही जानते हैं ।

"गुणा गुणेषु वर्तन्त"

इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों में बरते तो भी उन उन विषयों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । क्योंकि में इन्द्रिय नहीं, इन्द्रिय मेरी नहीं, मैं तो देह संघात् एवं उनकी क्रियाओं का साक्षी, कूटस्थ, असंग,

निष्क्रिय, निर्विकार, एकरस आत्मा हूँ । इन्द्रियों द्वारा मन विषयों को सुख बुद्धि करके भोगे अथवा दुःख प्राप्त करे, उनका मेरे से किंचित् भी सम्बन्ध नहीं है ।

जिसे बुद्धि की मंदता के कारण महावाक्य के विचार करने से प्रत्यक्ष सोऽहम् ज्ञान नहीं होता है, उसके लिए लय चिन्तन रूप ध्यान कर्तव्य है । आत्मनिष्ठावान् या मुमुक्षु हेतु ध्यान अनावश्यक है । '**तस्य कार्यं न विद्यते**'

परिभाषा

विवेक

दो मिली वस्तुओं में पृथक-पृथक् जान लेने को विवेक कहते हैं । जैसे देह क्या है ? परिवर्तनशील क्याहै ? अपरिर्वतनशील क्या है ? अनित्य क्या है ? नित्य क्या है ? असत् क्या है ? सत् क्या है ? विनाशी क्या है ? अविनाशी क्या है ? स्वयं प्रकाश क्या है ? जड़ क्या है ? चेतन क्या है ? दृश्य क्या है ? द्रष्टा क्या है ? क्षर क्या है ? अक्षर क्या है ? शव क्या है ? शिव क्या है ? बद्ध क्या है ? मुक्त क्या है ? क्षेत्र का क्या स्वभाव है ? क्षेत्रज्ञ का क्या स्वभाव है इत्यादि ।

विकल्प

जो नाम मात्र हो, सुनाई तो पड़े परन्तु वस्तु का अभाव हो, खोजने पर वह वस्तु कभी कहीं किसीको न मिले, न किसी प्रकार अनुभव में आ सके । उसे विकल्प कहते हैं । जैसे वर्ष, माह, तारीख, दिन, वार, पारस इत्यादि । नगर का नाम, व्यक्ति का नाम, जाति, आश्रम, सम्बन्ध ।

असत्

जो तीनों कालों में अभाव रूप होता है उसे असत् कहते हैं । जैसे शरीर उत्पत्ति के पूर्व नहीं था, मरने के बाद भी नहीं रहेगा और वर्तमान में भी प्रतिक्षण परिवर्तन होने से अभाव रूप हो रहा है । जैसे घड़ी के घन्टे अथवा मिनट की सूई अथवा सिनेमा में चलता दृश्य

स्थिर दिखाई पड़ने पर भी वह प्रतिक्षण बदलता जा रहा है, किन्तु इतनी सूक्ष्मता से बदला जा रहा है कि आँखें उस परिवर्तन को पकड़ नहीं पाती है । तात्पर्य यह है कि यह शरीर एवं जगत भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों में कभी स्थायी भाव रूप से नहीं रहता है । अतः यह असत् है । किन्तु सत् तत्व आत्मा की सत्तासे ही असत् नाम, रूप, जगत् सत्तावान प्रतीत होता है ।

परमब्रह्म

'ब्रह्म' प्रकृति एवं वेद को ही कहते हैं । परन्तु परमब्रह्म तो एक परमात्मा ही है । जिससे बढ़कर दूसरा कोई व्यापक, निर्विकार सदा रहने वाला निरन्तर तत्त्व नहीं है । वह परम ब्रह्म कहा जाता है ।

अविनाशी

किसी काल में, किसी कारण से, किसी साधन से कभी किंचित् मात्र भी जसमें परिवर्तन नहीं होता, जिसकी क्षति नहीं होती, जिसका अभाव नहीं होता उसको अविनाशी या अनाशी कहते हैं ।

शरीर

पांच महाभूतों के पच्चिस तत्त्व से निर्मित जीव का भोगायतन और नूतन कर्म करने का क्षेत्र को, शरीर कहते हैं । इसी को नौ द्वार वाली पूरी कहते हैं । इसे क्षर क्षेत्र, प्रकृति भी कहा जाता है । (गीता : ३/)

नित्य

जिसमें सभी कल्पना, काल, भाव, वस्तु, उत्पन्न होते हैं, क्षण स्थायी होकर पुनः लय को प्राप्त होते हैं, उस कालातीत, भावातीत वस्तु को नित्य कहते हैं । अर्थात् जिसमें जाग्रत, स्वप्न,

सुषुप्ति, भूत, भविष्य, वर्तमान, बाल, युवा, वृद्ध, मुर्च्छा, ध्यान, समाधि, उत्पत्ति, स्थिति तथा लय प्रतीत होते रहते हैं उस निरन्तर तत्त्व आत्मा को ही नित्य कहते हैं।

अपने को शरीर में रखने से अहंता अर्थात् मैं पन पैदा होगया कि मैं शरीर हूँ, स्त्री, पुरुष, बाल, युवा, वृद्ध, गोरा, काला, दुर्बल, मोटा, नाटा, लम्बा, सुन्दर, असुन्दर हूँ इस प्रकार के मनो भाव को अहंता, देहाध्यास, तादात्म्य, जड़-चेतन ग्रन्थि भी कहते हैं। यह स्वयं को जिन-जिन में रख लेता है, उन-उन स्थितियों में ''मैं '' पन पैदा हो जाता है । जैसे धन में रख लिये तो मैं धनी हूँ, राज्य में रख लिया तो राजा हूँ, विद्या में रख लिया तो मैं विद्वान हूँ देह में रख लिया तो मैं स्त्री, पुरुष हुँ आदि।

ममता

शरीर को अपने में रखने से ममता अर्थात् मेरा पन पैदा हो गया कि मेरा शरीर दुर्बल,रोगी, मोटा, होगया है । अनात्म पदार्थों में मेरा-पन होना ही ममता कहलाती है । जैसे मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरी बेटी, मेरा बेटा, मेरा घर, मेरा स्वामी, मेरा गुरु, मेरे सम्बन्धी इत्यादि ममता रूप है। यह स्वयं जिन-जिन चीजों को अपने में रखता चला जाता है, उन-उन चीजों में मेरा-पन होता ही चला जाता है । जैसे कुटुम्ब को अपने में रख लिया तो ''कुटुम्ब मेरा है''। धन को अपने में रख लिया तो 'धन मेरा है' । मन को अपने में रख लिया तो 'मन मेरा है' । मन को तन में रख लिया तो तन मेरा हैं । ऐसा मिथ्या अहंकार कर जीव संसार बन्धन को प्राप्त होता है ।

पण्डित

सत्-असत्, बन्ध-मोक्ष, कर्तव्य-अकर्तव्य का जिन्हें स्पष्ट विवेक हो गया है उसे पण्डित कहते हैं । जन्म, जाति एवं वेष धारण कर लेने से कोई पंडित अर्थात् ब्राह्मण नहीं हो सकता ।

''समत्वं योग उच्यते''

गीता : २-४८

समता ही योग है । अर्थात् समता परमात्माका स्वरूप है । जिनका मन सिद्ध-असिद्ध, प्रतिकूलता-अनुकूलता, लाभ-हानि, मान-अपमान, संयोग-वियोग आदि में सम रहता है, मन में राग-द्वेष नहीं होता है उन ज्ञानी लोगों ने जीवित अवस्था में ही संसार को जीत लिया है । क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है; अतः उनकी स्थिति ब्रह्म में ही है । उसे पुण्य-पाप का स्पर्श नहीं होता । क्योंकि उसमें कामना, वासना, ममता, आदि दोष किंचित मात्र भी नहीं रहते ।

''योगः कर्म सु कौशलम्''

गीता: २/५०

कर्मों की सिद्धि-असिद्धि में और उन कर्मों के फल की प्राप्ति-अप्राप्ति में राग-द्वेष रहित सम रहना ही कर्मों में कुशलता है । अर्थात् कर्ता-भोक्ता भाव रहित अभिमान से रहित कर्म करना ही वास्तविक योग है । जो मुक्ति का साधन कहलाता है ।

''परधर्मो भयावहः''

गीता : ३/३५

जीव स्वयं परमात्मा का अंश है और शरीर ससांर का अंश है । जीव स्वयं को परमात्मा का न मानकर शरीर, संसार को अपना मान लेता है तब यह 'परधर्म' हो जाता है । उत्पन्न होना, उत्पन्न हो रहना, बदलना, बढ़ना, घटना तथा मरजाना, भोग एवं संग्रह की इच्छा, मान, बड़ाई की इच्छा, काम-क्रोध आदि जितने शरीर के, संसार के धर्म है

वे सब परधर्म है । राग-द्वेष, दुःख-शोक, चिंता, मोह-ममता, भयादि अनात्म शरीर के साथ तादात्म्य बुद्धि करके ही उत्पन्न होते हैं । अस्तु अनित्य शरीर के साथ में मेरा भाव रखना ही 'परधर्म' है जो जीव को चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कराने व दुःख का हेतु है ।

''स्वधर्मे निधनं श्रेयः''

गीताः ३/३५

जीव 'स्वयं' परमात्मा का अंश है । प्रकृति और उसका कार्य शरीर 'अन्य' है । स्वयं का धर्म अर्थात् आत्माका स्वभाव साक्षी, निर्विकार, अलिप्त, असंग, निर्मल, अविनाशी, सच्चिदानन्द मुक्तादि है । अतः साधक को अपने अंशी परमात्मा के स्वभाव के साथ एक होकर रहना अर्थात् अपने को साक्षी आत्मा जानना ही मोक्ष का एक मात्र साधन है । देह के साथ एक होकर चलना ही 'परधर्म' है ।

''गुणा गुणेषु वर्तन्त'' – गीता : ३/२८

प्रकृति जन्य सत्व, रज, तम गुण से उत्पन्न होने के कारण शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, आदि भी 'गुण' ही कहलाते हैं और इन्ही देह संघात् द्वारा समस्त क्रियाएँ होती रहती है । अर्थात् गुण ही गुण के द्वारा गुण को ही भोगता रहता है । तात्पर्य यह है कि सत्वगुण, रजोगुण के द्वारा तमोगुण रूप विषय को भोगता है । अविवेक के कारण अज्ञानी पुरुष इन गुणों के साथ अपना सम्बन्ध मानकर 'मैं शरीर हूँ', 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा निश्चय कर संसार बन्धन को प्राप्त होता है ।

''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।''

गीता : १८/६६

चौदह त्रिपुटियों द्वाराा जो भी कार्य होता है, उन समस्त इन्द्रियों के धर्मों को इन्द्रियों का ही जानना चाहिये एवं अपने को उन इन्द्रियों एवं उनके कर्मों का साक्षी ही जानना मुक्ति का एक मात्र साधन है । जैसे आंख देखती है, कान श्रवण करता है, यह इन्द्रियों के अपने धर्म है, किन्तु अज्ञानी व्यक्ति इन धर्मों में मैं पन का तादात्म्य कर 'मैं देखता हूँ', 'मैं सुनता हूँ' ऐसा मिथ्या अहंकार कर बन्धन को प्राप्त होता रहता है । अतः समस्त अनात्म धर्मों के अहंकार का त्याग कर एक मात्र साक्षी ही बने रहना चाहीये ।

''पण्डिताः समदर्शिनः''

गीता : ५-१८

ज्ञानी पुरुष प्राणियों के शरीरों की उपयोगिता में व्यावहारिक भेद होने पर भी ब्राह्मण-चाण्डाल, हाथी-गधा, गाय-कुत्ता में एक पूर्ण अखण्ड परमात्मा का ही विचार नेत्रों से दर्शन करते है । शरीर दृष्टि से भी सभी प्राणियों के शरीर एक ही आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी से रचित होने से समान ही है ।

''विमुक्तश्च विमुच्यते''

अज्ञान जनित कर्म, अन्धविश्वास, रूढ़ीवाद, मताग्रह, नाम, जाति, आश्रम, शरीर एवं सम्बन्धों का मनसे त्याग किये बिना कोई मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् समस्त अज्ञान कृत बन्धनों का त्याग करने वाला विवेक वान ही मुक्ति को प्राप्त होता है ।

महावाक्य

जिन वाक्यों के द्वारा साधक को जीव ब्रह्म की अभिन्नता का स्पष्ट बोध होता है ऐसे वाक्यों को महावाक्य, कहते हैं । जैसे

:- 'अहंब्रह्मास्मि', 'सोऽहम्','शिवोऽहम्', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' इत्यादि ।

'अहं ब्रह्मास्मि'

अर्थात् ''मैं ब्रह्म हूँ'' -- अथर्व वेद, बृहद.उप. १/४/१०

''अयमात्मा ब्रह्म''

अर्थात् यह आत्मा जो इस शरीर में 'है' रूप में विद्यमान है यह चैतन्यात्मा ब्रह्म है । - अथर्व वेद, मुण्डक.उप. २

'प्रज्ञान ब्रह्म'

यह साक्षी आत्मा ब्रह्म है । अर्थात् जिस चैतन्य के द्वारा पांचों ज्ञान इन्द्रियों के पंच विषयों का अनुभव होता है वही वृति उपलक्षित चैतन्य प्रज्ञान कहलाता है । - ऋग्वेद, एतरेय. उप. ३/३

'तत्त्वमसि'

यह उपदेशात्मक महावाक्य श्रीगुरु देव के द्वारा ब्रह्म जिज्ञासा करने वाले मुमुक्षु के प्रति है । अर्थात् 'वह परमात्मा तू है ।' सामवेद, छान्दोग्य उप. ६/८/७

ऐसे महावाक्यों के श्रवण द्वारा जिज्ञासु के बुद्धि से ब्रह्म के प्रति अभानापादक आवरण दूर होकर ब्रह्म का साक्षात् बोध हो जाता है कि 'वह ब्रह्म मैं हूँ'' ।

आवरण

अपने आत्मस्वरूप को न जानकर स्वयं को देह संघात रूप जानना आवरण दोष कहलाता है । इस आवरण के दो भेद है ।

१) असत्वापादक आवरण अर्थात् ब्रह्म, आत्मा नहीं है ।
२) अभानापादक आवरण अर्थात् मैं आत्मा को नहीं जानता, ब्रह्मादिक दिखाई नहीं पड़ता ।

अभाना पादक आवरण

'मैं आत्मा को नहीं जानता', 'मैं परमात्मा को नहीं जानता ।' इस प्रकार का जिज्ञासु के द्वारा अपने स्वरूप के प्रति अज्ञान होने को अभानापादक आवरण कहते हैं । जो महावाक्य श्रवण द्वारा दूर होता है ।

असत्वापदक आवरण

'ब्रह्म नहीं है' । 'परमात्मा नहीं है' । 'आत्मा नहीं है' । 'जगत में कोई सत्य नहीं है' ऐसी भ्रान्त बुद्धि दोष को असत्वापदक आवरण कहते हैं जो अवान्तर वाक्य द्वारा दूर हो जाता है । और ब्रह्म आत्मा है ऐसा विश्वास करने लग जाता है ।

अवान्तर वाक्य

महावाक्य के सहयोगी वाक्य को अवान्तर वाक्य कहते हैं । जैसे 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म''राम सच्चिदानन्द दिनेशा'। इस प्रकार के वाक्यों में केवल ब्रह्म की सत्ता का ही बोध होता है। अवान्तर वाक्य श्रवण से जिज्ञासु की बुद्धि से ब्रह्म के प्रति असत्वापादक आवरण दूर हो जाता है एवं फिर उसके मन में ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' उदय हो जाती है जो महावाक्य श्रवण द्वारा पूर्ण हो जाती है । अवान्तर वाक्य द्वारा ब्रह्म का परोक्षज्ञान होता है ।

चिदाभास की सप्तअवास्था

(१) अज्ञान, (२) आवरण-(असत्वापादक, अभानापादक),

(३) शोक, (४) अवान्तर वाक्य एवं परोक्ष ज्ञान (५) शोक नाश, (६) महावाक्य एवं अपरोक्ष ज्ञान, (७) अति हर्ष ।

सामान्य चैतन्य

जो अस्ति, भाति, प्रिय, रूप से सदा सर्वत्र विद्यमान रहता है । जिसमें किसी प्रकार की क्रिया विशेष प्राणियों की तरह नहीं होती । वही सामान्य चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ ।

विशेष चैतन्य

अन्तःकरण की बुद्धि वृत्ति में सामान्य चैतन्य ब्रह्म का प्रतिविम्ब रूप चिदाभास को विशेष चैतन्य कहते हैं । जिसके द्वारा वह जीव रूप होकर समस्त क्रियाओं का कर्ता एवं फल भोक्ता बन चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ दुःख पाता रहता है ।

चैतन्य

जो स्वयं ज्ञान स्वरूप है । समस्त नाम, रूप, प्रपंच को जानता है किन्तु जिसे मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण एवं शरीरादि कोई भी दृश्यवत् जान नहीं सकते, उसे चैतन्य आत्मा कहते हैं ।

तत्त्वमसि

तत् + त्वम् + असि = 'तत्त्वमसि' = वह तू है ।

तत् = ईश्वर वाचक त्वम् = जीव वाचक

असि = एकता दर्शाता है । अर्थात् है ।

तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर

ईश्वर के तीन देह – (१) विराट, (२) हिरण्यगर्भ (३) अव्याकृत

तीन अभिमान – (१) वैश्वानर (२) सूत्रात्मा (३) ईश्वर

तीन अवस्था – (१) उत्पत्ति (२) स्थिति (३) प्रलय

उपरोक्त नवतत्त्व दशवाँ माया तथा ग्यारहवाँ अधिष्ठान ईश्वर साक्षी परब्रह्म मिलकर तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर कहलाता है ।

तत् पद का लक्ष्यार्थ ब्रह्म

माया एवं माया के उपरोक्त नव कार्य का बाध करके जो एक अविकारी, असंग, पूर्णानन्द, सर्वात्मा परब्रह्म रहता है वही तत् पद का लक्ष्यार्थ ब्रह्म है ।

त्वम् पद का वाच्यार्थ जीव

जीव के तीन देह	: (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म, (३) कारण
जीव के तीन अभिमान	: (१) विश्व, (२) तैजस (३) प्राग
जीव की तीन अवस्था	: (१) जाग्रत, (२) स्वप्न, (३) सुषुप्ति

उपरोक्त नव कार्य दशवाँ अविद्या तथा ग्यारवाँ अधिष्टान जीव साक्षी, कूटस्थ आत्मा मिलकर त्वम् पद का वाच्यार्थ जीव कहलाता है ।

त्वम् पद का लक्ष्यार्थ आत्मा

अविद्या और उसके सभी नव कार्यों का त्याग कर के जो एक निर्विकार, असंग, निष्क्रिय, अखण्ड, सच्चिदानंद, साक्षी आत्मा रहता है, वही त्वम् पद का लक्ष्यार्थ कूटस्थ आत्मा है ।

कुटस्थ

कूट = माया, स्थ = स्थित रहना ।

विकारी माया में जो निर्विकार रूप से स्थित रहता है उसे कूटस्थ, आत्मा कहते हैं । जैसे लोहार के यहाँ नाना अस्त्र शस्त्र के जिस निहाई एवं घन से बनाया जाता है वह निहाई एवं घन स्वयं सदा

एकरूप ही बने रहते हैं, उनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आता ।

उसी प्रकार यहाँ मन लोहार तथा नाना प्रकार के ऊँच-नीच कर्म कूटस्थ आत्मा के सहारे करके चौरासी लाख में भ्रमण करता है; किन्तु आत्मा ज्यों कि त्यों लोहार की निहाई वत् अचल एकरस ही बना रहता है ।

षड् लिंग

वेदान्त महावाक्यों का तात्पर्य से निश्चय करने के लिये छह लिंग है । उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति ।

धर्म

जो सत्ता सचराचर स्थावर जंगम को समान रूप से धारण करता है; प्रकाशित करता है उसे धर्म कहते हैं । जैसे सूर्य, पवन, जल, पृथ्वी । धर्म अनादि अनन्त है । वह एक आत्मा ही है ।

सम्प्रदाय

जो सत्ता मत, जाति के रक्षक, समर्थक एवं अन्य के विरोधी है । अपनी उन्नती, दूसरों की अवनती करने में तत्पर रहते हैं । सम्प्रदायों का प्रारम्भ हुआ है इसीलिये उनका नाश भी अवश्य होगा । जैसे हिन्दु, मुस्लिम्, जैन, वौद्ध, सिख, इसाई, आर्य, ब्रह्मकुमारी । इस प्रकार अनेक मतभेद है । यह सब संगठन, समाज है किन्तु धर्म नहीं है ।

व्यष्टिचेतन

एक जीव को व्यष्टि कहते हैं । जैसे एक वृक्ष ।

समष्टि चेतन

जीवों के समुह को समष्टि चेतन ईश्वर कहते हैं । जैसे वृक्षों के समुह को जंगल कहते हैं ।

जीव

अविद्या–अन्तःकरण में झलकने वाले चैतन्य कूटस्थ आत्मा का प्रतिविम्ब रूप चिदाभास और अविद्या तथा अन्तःकरण का अधिष्ठान कूटस्थ आत्मा यह तीनों मिलकर जीव कहलाता है ।

ईश्वर

माया, माया में झलकने वाले चैतन्य ब्रह्म के प्रतिविम्ब रूप चिदाभास और इन दोनों के अधिष्ठान ब्रह्म यह तीनों मिलकर ईश्वर कहलाता है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कारण शरीर माया का अभिमानी चैतन्य को ईश्वर कहते हैं ।

परोक्ष ज्ञान

ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है । ऐसा शास्त्रों से, संतों से मैंने सुना है किन्तु अभी उसे जाना नहीं है । इस प्रकार ब्रह्म सत्ता को अन्य रूप से स्वीकार करना परोक्ष ज्ञान कहलाता है । ऐसे परोक्ष ज्ञानी को सद्गुरु 'तत्त्वमसि' 'वह तू है' इस प्रकार महावाक्य उपदेश कर 'अहंब्रह्मास्मि' 'मैं ब्रह्म हूँ' रूप से अपरोक्ष ज्ञान करादेते हैं ।

दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान

सच्चिदानन्द ब्रह्म है ऐसा जो शास्त्रो से पढ़ा जान था, उसका जब सद्गुरु कृपा से वह सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं हूँ ऐसा अभेद रूप से जानलेना ही अपरोक्ष ज्ञान कहलाता है ।

जैसे अज्ञान काल में देह के प्रति हमें दृढ़बोध रहता है कि मेरा यह नाम है । मैं पशु नहीं मनुष्य हूँ । मैं स्त्री नहीं पुरुष हूँ । मैं पुरुष नहीं स्त्री हूँ । मेरी यह जाति है इत्यादि । इस तरह सद्गुरु कृपा से जब

तत्त्वमसि महावाक्य श्रवण कर सोऽहम् स्वरूप का दृढ़ बोध भीतर हृदय में अंकित हो जावे उसे दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं । जो साक्षात् मोक्ष का हेतु है । यहि आत्मसाक्षात्कार कहलाता है ।

असम्भावना

आत्मा, परमात्मा, मुक्ति, नाम की वस्तु है ही नहीं एवं जगत् झूठा नहीं है । ऐसा मानना ही असम्भावना दोष है ।

असम्भावना संशय

संशय दो प्रकार का होता है । (१) प्रमाण गत (२) प्रमेय गत ।

प्रमाणगत संशय

जीव ब्रह्म की एकता है तथा ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है । ज्ञान के अतिरिक्त अन्य साधन से मुक्ति नहीं होती है, यह वेद मत है ।

जिज्ञासु कें मन से यह संशय हो कि वेदान्त शास्त्र में जीव तथा ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है या किसी अन्य कला, विज्ञान, इतिहास का प्रतिपादन कियागया है । ऐसे संशय को प्रमाण गत संशय कहते हैं । जो वेद श्रवण द्वारा दूर हो जाता है ।

प्रमेयगत संशय

वेद प्रमाण से जाना गया 'तत्त्वमसि' वह तू है । इस उपदेश श्रवण कर भी जिसे संशय होता है कि वह ब्रह्म मैं कैसे हो सकता हूँ ? या जीव ब्रह्म एक है या भिन्न ? जीवात्मा कर्ता–भोक्ता है या आत्मा कर्ता–भोक्ता है ? मैं तो शरीर हूँ अथवा जीवात्मा ? जीव ब्रह्म का भेद सत्य हे या अभेद ? इस प्रकार संशय को प्रमेयगत संशय कहते हैं जो वेदान्त मनन के फल स्वरूप दूर हा जाता है ।

विपरीत भावना

जीव ब्रह्म से पृथक् है । जीव ब्रह्म नहीं हो सकता और यह देहादि प्रपंच सत्य है । मैं देह हूँ । ब्रह्म मुझसे भिन्न है । इस प्रकार का बुद्धि में निश्चय विपरीत भावना कहलाती है । जो वेदान्त निदिध्यासन द्वारा दूर होकर, ''मैं देहादि प्रपंच नहीं हूँ मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ'' ऐसी सत्य धारणा बुद्धि की हो जाती है ।

वेदान्त

वेद के अन्तिम भाग, ज्ञान काण्ड को वेदान्त कहते हैं । सभी उपनिषद वेदान्त के अन्तर्गत आती हैं । अथवा जिसे जानने के बाद और जानने को कुछ भी शेष नहीं रहता है, उस ब्रह्म ज्ञान को वेदान्त ज्ञान कहते हैं ।

चैतन्य के चार रूप

(१) प्रमाता चैतन्य, (२) प्रमाण चैतन्य, (३) विषय चैतन्य याने प्रमेय चैतन्य, (४) फल चैतन्य ।

प्रमाता चैतन्य

अन्तः करण विशिष्ट चैतन्य का नाम प्रमाता चैतन्य है, उसे ही जीव कहते हैं ।

प्रमाण चैतन्य

चिदाभास सहित अन्तःकरण की वृत्ति से अविच्छिन्न जो चैतन्य है, उस सामान्य चेतन को प्रमाण चैतन्य कहते हैं ।

प्रमेय चैतन्य

घट-पटादि का विषयों के साथ अन्तःकरण वृत्ति का सम्बन्ध होने से जो ज्ञेय वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसे प्रमेय चैतन्य अथवा विषय चेतन कहते है ।

प्रमा चैतन्य (प्रमिति चैतन्य)

इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध होने से जो ज्ञान होता है उसे प्रत्यक्ष प्रमा कहते हैं ।

इस प्रकार अन्तःकरण एवं इन्द्रिय की उपाधि भेद से एक ही चैतन्य चार प्रकार का कहलाता है ।

(१) अन्तःकरण (२) वृत्ति, (३) घट पटादिक पदार्थ यह तीनों उपाधियाँ जबतक पृथक्-पृथक् देश में रहते हैं तब तक (१) प्रमाता चैतन्य, (२) प्रमाण चैतन्य, (३) प्रमेय चैतन्य एवं प्रमा चैतन्य या फल चैतन्य का कल्पित भेद प्रतीत होता है ।

जब अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र इन्द्रिय के सहायता से बाहर निकलकर घटादिक पदार्थों तक पहुँचती है, तब अन्तःकरण वृत्ति तथा विषय दोनों उपाधियों का एक देश में स्थिति होने से वृत्ति अवच्छिन्न चेतन व विषय अवच्छिन्न चेतन दोनों का अभेद हो जाने से उसे प्रमा चैतन्य या प्रत्यक्ष प्रमा या फल चैतन्य कहते हैं । इस प्रकार प्रमाण चैतन्य एवं विषय चैतन्य का अभेद ही प्रत्यक्ष प्रमा कहलाता है ।

अविद्या

मलिन सत्वगुण युक्त प्रकृति को अविद्या कहते हैं । जिसमें तमोगुण मुख्य रहता है । जो सत्व तथा रजोगुण को दबाकर रखता है ।

माया

शुद्ध सत्वगुण प्रकृति को माया कहते हैं । जिसमें सत्वगुण मुख्य रहता है । जो रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर रखता है ।

अनादि

जो वस्तु उत्पत्ति रहित होती है उसे अनादि कहते हैं ।

अनन्त

जो वस्तु नाश रहित होती है उसे अनन्त कहते हैं ।

छह अनादि सत्ता

(१) शुद्ध ब्रह्म, (२) माया, (३) दोनों का सम्बन्ध, (४) जीव, (५) ईश्वर, (६) इन सबका परस्पर भेद ।

शुद्धब्रह्म : यह अनादि है । इस ब्रह्मकी अविद्या, माया से उत्पत्ति नहीं हो सकती है । अध्यस्त अविद्या, माया, जगत, का ब्रह्म तो अधिष्ठान है । अध्यस्त अपने अधिष्ठान की उत्पत्ति नहीं कर सकता । ईश्वर, माया, जीव आदि की सिद्धि भी बिना ब्रह्म के नहीं हो सकती । इसलिए ब्रह्म किसी के संयोग से उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि ब्रह्म अनादि है ।

अविद्या अनादि है : क्योंकि ब्रह्म कुटस्थ निर्विकार है । उस ब्रह्म से कल्पित अविद्या की उत्पत्ति नहीं हो सकती । तथा जीव, ईश्वर की सिद्धि, अविद्या, माया की सिद्धि के ही आधीन है उनके द्वारा अविद्या की उत्पत्ति सम्भव नहीं है । इसलिए अविद्या अनादि है ।

जीव ईश्वर अनादि है : कारण यह है कि कूटस्थ निर्विकार, अखण्ड, असंग, ब्रह्म के द्वारा जीव एवं ईश्वर की उत्पत्ति सम्भव नहीं है । क्योंकि ब्रह्म अद्वितीय । केवल माया द्वारा भी जीव की उत्पत्ति सम्भव नहीं है । क्योंकि स्वयं अध्यस्त माया किसी का अधिष्ठान नहीं हो सकती । अब ईश्वर से जीव की एवं जीव से ईश्वर की भी उत्पत्ति सम्भव नहीं । अथवा अपने आप भी जीव एवं ईश्वर की उत्पत्ति सम्भव नहीं है । अविद्या तथा चैतन्य के सम्बन्ध की सिद्धि ही जीव तथा ईश्वर की सिद्धि । वह सम्बन्ध स्वयं अनादि है । इसलिए अविद्या, माया से जीव ईश्वर की उत्पत्ति सम्भव नहीं है । इसलिए जीव तथा ईश्वर अनादि है ।

अविद्या तथा चैतन्य का सम्बन्ध भी अनादि है : कारण यह है कि ब्रह्म और अविद्या अनादि है । इसलिए इन दोनों का

तादाम्य सम्बन्ध भी अनादि है । ईश्वर, जीव तथा परस्पर भेद यह तीनों तो सम्बन्ध की सिद्धि होने पर ही सिद्धि हो सकता हैं । इसलिए इनके द्वारा अविद्या और चैतन्य का सम्बन्ध उत्पन्न होना सम्भव नहीं है । इसलिए अविद्या और चैतन्यात्मा का सम्बन्ध अनादि ही मानना पड़ता है ।

पाँचों वस्तुओं का भेद भी अनादि है : कारण यह है कि अपने से अपनी ही उत्पत्ति माने तो आत्माश्रय दोष की प्राप्ति होती है । इसलिए इन पांच वस्तुओं की अपने आप से भी उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है । उनकी उत्पत्ति न होने से उनका परस्पर भेद है । इसलिए भी उत्पत्ति कहना बन नहीं सकता ।

इसलिए उपरोक्त छह वस्तु वेदान्त में अनादि कही जाती है । इनमें ब्रह्म अनादि अनन्त है । शेष माया, सम्बन्ध, जीव, ईश्वर एवं परस्पर भेद यह पांचों सांत (अन्त वाले) हैं ।

कल्पित

सत्ता रहित प्रतीति को कल्पित कहते है । जैसे मरूस्थल में जल की प्रतीति, चन्द्रमा में हरिन की प्रतीति, सीप में चाँदी की प्रतीति, सूखे कटे वृक्ष में पुरुष की प्रतीति, आकाश में गन्धर्व नगर की प्रतीति, रस्सी में सर्प की प्रतीति की तरह आत्मा में जगत, जीव की प्रतीति होती है ।

विश्व

एक स्थूल शरीर अभिमानी जीव को विश्व कहते हैं ।

वैश्वानर

समस्त ब्रह्माण्ड के स्थूल शरीरों के अभिमान करने वाले चेतन को वैश्वानर (विराट) कहते हैं ।

तैजस

एक सूक्ष्मशरीर अभिमानी जीव को तैजस कहते हैं ।

सूत्रात्मा

समस्त ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म शरीरों के अभिमान करने वाले चैतन्य को हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) कहते हैं ।

प्राज्ञ

एक कारश शरीर के अभिमान करने वाले जीव को प्राज्ञ कहते हैं । प्र + अज्ञ = प्राज्ञ अर्थात् विशेष रूप से अज्ञान जैसे सुषुप्ति में कुछ भी पता नहीं चलता । जाग्रत में ही कहता है रात सुख से सोया कुछ पता नहीं चला ।

प्रत्यक्ष ज्ञान

जब अन्तःकरण की वृत्ति चैतन्य पर आरुढ़ होकर विषय तक पहुँचती है तब वहाँ विषय चैतन्य और वृत्ति उपहित चैतन्य का अभेद हो जाता है । तब वह अभिन्न चेतन अनावृत होकर स्वयं वस्तु आकार में भासता है । उसी भासमानता को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं ।

प्रमाण

जगतके पदार्थों का ज्ञान करने के लिये जीव के पास जो श्रोत्र, त्वचा,चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इन्हें को प्रमाण कहते हैं ।

प्रमेय

जो अन्तःकरण एवं पंच ज्ञानेन्द्रिय प्रमाण द्वारा जाना जाता है, उस दृश्य विषय जगत् का प्रमेय कहते हैं । जैसे रूप, आंख द्वारा देखा जाने के कारण प्रमेय है । आंख उसके ज्ञान का प्रमाण है ।

प्रमाता

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादि अन्तःकरण की चारो वृत्तियों में आरुढ़ चैतन्य को ही प्रमाता कहते हैं ।

अप्रमेय

जो प्रमा (प्रमाण) का विषय नहीं है अर्थात् जा अन्तःकरण और इन्द्रिय का विषय नहीं है, उसको 'अप्रमेय' कहते हैं । जैसे मैं (साक्षी, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, द्रष्टा, स्वयं प्रकाश) अप्रमेय वस्तु है ।

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूपादि वाह्य विषयों की तरह एवं अन्तःकरण द्वारा भुख-प्यास, सुख-दुःख, मानापमान, चंचल-शांत भीतर के विषयों की तरह भी नहीं जाना जा सकता है । इसलिए स्व संवेद्य अर्थात् अपने आपसे अपने को जानने वाला स्वयं सिद्ध होने से मैं (आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म) अप्रमेय कहा जाता है ।

किन्तु वेदान्त महावाक्यों द्वारा सोऽहम्, अहंब्रह्मास्मि रूप में जाना जाता है इसलिए यह भी प्रमेय कहा जा सकता है । यहाँ अन्य रूप से ग्रहण करने के अर्थ में प्रमेय नहीं है । जैसे जलते हुए दीपक को देखने हेतु अन्य प्रमाण की जरुरत नहीं होती है, इस तरह आत्म स्वरूप का बोध, प्रमेय रूप अन्य प्रमाण का विषय नहीं है ।

अन्तः करण

अपंचिकृत पंचभूत के मिलित सात्विक अंश से यह उत्पन्न होता है, जो मुख्य रूप से १९ तत्त्वों का माना जाता है । जो शरीर के अन्दर रहकर इन्द्रिय ज्ञान में सहायक होता है । इसमें ज्ञानशक्ति प्रधान होती है । इसकी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार वृत्तियाँ हैं ।

अनुबन्ध

ग्रन्थ के आरम्भ में, जो ग्रन्थ के सम्बन्ध में, अधिकारी विषय, प्रयोजन तथा सम्बन्ध बताया जाता है, उसे अनुबन्ध कहते हैं । इसी को देख विद्वानों की शास्त्र स्वाध्याय में जिज्ञासा होता है। जिस ग्रन्थ में अनुबन्ध नहीं होता, उस ग्रन्थ को पढ़ने के लिये विद्वान जिज्ञासा नहीं करते ।

अधिकारी

मल, विक्षेप दोष से रहित केवल एक अज्ञान दोष युक्त विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता आदि चार साधन सम्पन्न व्यक्ति ही वेदान्त ज्ञान का अधिकारी माना गया है ।

विषय

ब्रह्म और आत्मा की एकता वेदान्त शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है ।

प्रयोजन

सर्व दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष ही इसका प्रयोजन है ।

सम्बन्ध

ग्रन्थ और विषय का पतिपादक प्रतिपाद्य भाव रूप सम्बन्ध है । ग्रन्थ ब्रह्म विषय का प्रतिपादक है एवं ब्रह्म प्रतिपाद्य है ।

वेदों के काण्ड एवं मंत्र

कर्म	उपासना	ज्ञान
८०,०००	१६,०००	४,०००

जीव के दोष

मल विक्षेप

आवरण

स्नान के भेद

शारीरिक मानसिक
आत्मिक

शरीर के भेद

स्थूल सूक्ष्म कारण

बुद्धि अवस्था के भेद

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुर्च्छा, ध्यान, समाधि

पंच कोष

आवरण को कोश कहते हैं, जैसे तलवार को जिस खोल (मयान) में रखाजाता है वह तलवार का कोश कहलाता है । धन को जहाँ रखाजाता है उसे धनकोश कहाते हैं । इसी तरह आत्मा जिन पांच कोशों से आच्छादित रहता है उन्हें :

(१) अन्नमय कोश (२) प्राणमय कोश (३) मनोमय कोश,
(४) विज्ञानमय कोश तथा (५) आनन्दमय कोश कहते हैं।

यह पंचकोश तीन शरीरों के अर्न्तगत है ।

स्थूल शरीर : अन्नमय कोश
सूक्ष्म शरीर : प्राणमय कोश – पंच प्राण एवं पंच कर्मेन्द्रिय ।
मनोमय कोश – पंच ज्ञानेन्द्रिय एवं मन
विज्ञानमय कोश – पंच ज्ञानेन्द्रिय एवं बुद्धि
कारण शरीर : आनन्द मय कोश : चिदानन्द का साभास बुद्धि में प्रतिविब्मित आनन्द को आएनन्दमय कोश कहते हैं ।

आत्मा इन पंचकोशें से पृथक् उनका द्रष्टा साक्षी मात्र है । यह मैं हूँ ।

मल दोष एवं निवृत्ति

पाप वासना युक्त मलिन मन कहलाता है । मन, वचन, कर्म से अन्य प्राणी को दुःख पहुँचाना पापी मलिन मन की पहचान है, जो निष्काम कर्म द्वारा निर्मल हो जाता है ।

विक्षेप दोष एवं निवृत्ति

चित्त की चंचला को कहते हैं । जो एक लक्ष, एक बात, एक निर्णय पर अटल नहीं रहता । इस दोष को साकार या निराकार उपासना द्वारा शांत किया जाता है ।

आवरण दोष एंव निवृत्ति

अपने आपको देह एवं परमात्मा को अपने से भिन्न मानना, यह दोष वेदान्त श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा अति शीघ्र दूर हो जाता है ।

उर्मि

समुद्र में लहरों की तरह चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाली छह उर्मियाँ है ।

जन्म–मृत्यु = देह की उर्मि है ।
भुख–प्यास = प्राण की उर्मि है ।
सुख–दुःख = मन की उर्मि है ।

ऐषणा

पुत्रेषणा = पुत्र प्राप्ति की इच्छा ।
वित्तेषणा = धन प्राप्ति की ईच्छा ।
लोकेषणा = सभी लोकों में मेरी प्रंशसा हो ।

वासना

शास्त्र वासना, लोक वासना, द ` ह वासना ।

प्रतिबन्ध

(१) अशुद्धाहार, (२) अश्रद्धा, (३) बुद्धि मंदता, (४) विक्षेप, (५) भेदोपासना (६) वैर भाव ।

प्रकृति

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, तथा अहंकार यह अष्ट प्रकार की प्रकृति कहलाती है ।

प्रक्रिया ग्रन्थ

स्वमत का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों को कहते हैं । जैसे वेदान्तमत की स्थापना करने वाले, गीता, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद, पंचदशी, वेदान्तसार, अपरोक्षानुभूति, वाक्यवृत्ति, वाक्यसुद्धा, विवेक चूड़ामणि, आत्मबोध, तत्त्वबोध, विचार सागर, पंचीकरण इत्यादि को प्रक्रिया ग्रन्थ या प्रकरण ग्रन्थ कहते हैं ।

प्राग भाव

कार्य की उत्पत्ति से पूर्व उपादान कारण में जो कार्य का अभाव रहता है, उस अभाव को प्राक् अभाव कहते हैं । जैसे घड़ा बनने से पूर्व घड़े का मिट्टी पिण्ड में प्रागभाव है ।

प्रध्वंसाभाव

कार्य वस्तु के नाश होने पर जो उसकी प्रतीति का अभाव हो जाता है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं । जैसे घड़ के नाश हो जाने पर टुटे हुए टुकड़े में, घड़े का अभाव रहता है ।

ज्ञान के साधन

विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत, त्वम् पदार्थ शोधन (महावाक्य विवेक) यह बुद्धि ज्ञान के आठ अन्तरंग साधन है तथा पूजा, जप, ध्यान, यज्ञादि कर्म काण्ड ज्ञानाधिकारी बनने के बहिरंग साधन है । मुमुक्षु को सद्गुरु मिलजाने पर अन्तरंग साधन का सेवन करना चाहिये एवं बहिरंग साधन का त्याग करना चाहिये ।

कैवल्य मुक्ति

जिसे पाकर जीव को पुनः जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता, उसे कैवल्य मुक्ति कहते हैं । जो केवल आत्म ज्ञानी को ही प्राप्त होती है । प्रमाण रूप गीताः ८/१६ देखें ।

मुक्ति के चार भेद

(१) सालोक्य, (२) सामिप्य, (३) सायुज्य, (४) सारुप्य, यह चारों मुक्ति, भक्ति के फल स्वरूप प्राप्त होती है, जो कालान्तर में पुनः जन्म को प्राप्त होते हैं । प्रमाण रूप गीताः ८/१६ देखें ।

जीव के तीन कर्म

संचित्, प्रारब्ध, क्रियामाण

संचित् कर्म

जन्मों-जन्मों के किये शुभाशुभ कर्म, जिनका जीव ने अभी फल भोग नहीं किया है, ऐसे कर्मों को संचित् कर्म कहते हैं ।

क्रियमाण कर्म

वर्तमान में जो फलेच्छा से कर्म कर रहे हैं, उन शुभाशुभ कर्मों को क्रियमाण कर्म कहते हैं ।

प्रारब्ध कर्म

संचित् कर्मों में से भोगने के लिये निकले कर्म जो वर्तमान शरीर के जन्म के हेतु है । जिन के फल स्वरूप आज जीव सुख-दुःख, लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु रूप भोग रहा है । इसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं ।

प्रारब्ध के भेद

इच्छा प्रारब्ध, अनिच्छा प्रारब्ध, परेच्छा प्रारब्ध,

इच्छा प्रारब्ध : राजा जनक सम्पूर्ण जीवन राज कार्य करता रहा यह **इच्छा प्रारब्ध** कहलाता है ।

अनिच्छा प्रारब्ध : राजा रहुगण की पालकी अनिच्छा से जड़ भरत को उठानी पड़ी यह **अनिच्छा प्रारब्ध** है ।

परेच्छा प्रारब्ध : अर्जुन को श्रीकृष्ण के कहने से महाभारत युद्ध करना पड़ा, यह **परेच्छा प्रारब्ध** है ।

सामान्य अहंकार

मैं हूँ इस प्रकार के अहंकार वृत्ति को कहते हैं ।

विशेष अहंकार

मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, संन्यासी आदि पंजाबी, मारवाड़ी, उड़िया, सिन्धी आदि स्फुरण वृत्ति, विशेष अहंकार कहलाता है ।

अशुद्ध अहंकार

देह, कुटुम्ब, सम्पत्ति पदादि आनत्म पदार्थों का अहंकार करना । जो जीव के बन्धन का कारण है ।

शुद्ध अहंकार

अपने आत्म स्वरूप का अहंकार । अहंब्रह्मास्मि, सोऽहम्, शिवोऽहम्, यह अहंकार मोक्ष स्वरूपा है । अन्य सभी मलिन अहंकारों का नाशक है ।

कृतोपासक

मैं आत्मा ब्रह्म हूँ । इस ज्ञान धारण के पूर्व जिसने परमात्मा की उपासना की है । उसके पास ज्ञान के सभी साधन अंग होने से थोड़े से अभ्यास से वह चौथी भूमिका आत्म साक्षात्कार को प्राप्त हो जाता है ।

अकृतोपासक

''मैं ब्रह्म हूँ'' इस ज्ञान निष्ठा के पूर्व जिसने परमात्मा का दर्शन रूप ध्यान भक्ति नहीं की उसे अकृतोपासक कहते हैं । उसने केवल श्रद्धा, भक्ति पूर्वक सद्गुरु की कृपासे ही सीधे ज्ञान में प्रवेश कर लिया है । इसके पास विवेक, वैराग्य आदि सभी साधन सम्पत्ति का अभाव रहता है । केवल एक दो साधन जैसे श्रद्धा, तितिक्षा, शम,दमादि प्रतीत होते हैं । यह दीर्घ काल के वेदान्त श्रवण, मनन, अभ्यास से चतुर्थ भूमिका सत्वापति अर्थात् आत्म साक्षात्काकर को प्राप्त कर लेता है ।

अकृताभ्यगम

'निर्दोषं हि समं ब्रह्म', ब्रह्म निर्दोष पक्षपात से रहित एवं सर्वत्र समता भाव में स्थित है । नास्तिक अज्ञानता से पुनर्जन्म नहीं मानता है । यदि ऐसा सत्य होता तो जन्म का कष्ट, गर्भवास का कष्ट एवं बिना किये कर्म के सुख-दुःख की प्राप्ति होना यह उसका पक्ष में अकृताभ्यागमता हो जाती एवं ईश्वर पर दोषारोपण हो जाता है कि हम तो पूर्व जन्म में नहीं थे, फिर हमें किस लिये जन्म दिलाकर कष्ट भोग करने को मजबुर किया ?

कृतनाश

जो अज्ञानी पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं उन्होंने जिन कर्मों के फल भोगने की इच्छा से कर्म किया था और कर्म फल भोगने के पूर्व ही, यदि वह मर जाता है तो उसके लिये कृतनाशता हो जावेगी । ईश्वर पर मिथ्या दोषारोपण हो सकेगा कि मैंने कर्म फल नहीं भोगा अभी एवं मेरी मृत्यु क्यों कर दी गई ? यह कृतनाशता एवं अकृताभ्यगम दोनों दोषों से ईश्वर मुक्त है ।

जीव अनादि होने से पूर्व-पूर्व के कर्मों को उत्तर- उत्तर योनि में भोगता रहता है । 'अन्त मति सो गति' यह कहावत प्रसिद्ध है ।

"या मतिः सा गतिर्भवेत "

जो जस करइँ सो तस फल चाखा ।
कोउ ना काहू सुख-दुःख कर दाता ।।

तन समर्पण

गुरु की आज्ञा का कभी तिरस्कार न करना । मन में अपने गुरु के प्रति साक्षात् परबह्म भावना रखकर बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम से उनकी सेवा करना चाहिये । गुरु आज्ञा की सदा प्रसन्नता पूर्वक प्रतिक्षा करता रहे एवं मेरे सद्गुरु कैसे प्रसन्न हो, ऐसी मन में इच्छा करता रहे । समर्पण से पूर्व यह देखलेना उचित होगा कि गुरु लोभी, कामी, संसारी तो नहीं है ।

धन समर्पण

देह, स्त्री, पुत्र, जमीन, पशु, दास-दासी, मकानादि सभी का मन से अभीमान त्यागना एवं सद्गुरु की सेवा में इनको लगाना चाहिये । यदि गुरु गृहस्थाश्रमी नहीं है तो लोक कल्याणार्थ इनको लगाना चाहिये ।

किन्तु परिवार वालों को भूखा, अभाव ग्रस्त रखकरर दान भी नहीं करना चाहिये ।

मन समर्पण

सद्गुरु के द्वारा दर्शाये सिद्धान्त को मन से पूरा पूरा दृढ़ता से संशय रहित हो ग्रहण करना । यदि रूग्णावस्था में तन समर्पण एवं दरिद्रता से धन समर्पण न हो सका तो भी मन समर्पण द्वारा जीव का कल्याण निश्चित रूप से हो जावेगा । परन्तु मन समर्पण न हुआ तो जीव का कल्याण तन, धन समर्पण मात्र से कदापि नहीं हो सकेगा । तन, धन, की सेवा से पुण्य भोग अवश्य कर सकेगा ।

वाणी समर्पण

अपनी वाणी द्वारा सद्गुरु के गुण एवं कृपा की चर्चा अन्य के समक्ष करे, किन्तु कभी उनके निष्कलंक, निर्विकार, गंगा, सूर्य, अग्निवत् पवित्र जीवन में दोष दृष्टि न करे । न कभी किसी से निन्दा सुने न करे ।

यदि सद्गुरु शिष्य की उन्नति हेतु क्रोध करता दिखाई पड़े तो उन्हें **दुर्वासा** रूप ही जाने, लेकिन दोष दृष्टि न करे ।

यदि सद्गुरु शिष्य को ऊपर उठाने हेतु प्रेमभाव प्रकट करे तो उन्हें **श्रीकृष्ण** रूप ही जाने, लेकिन दोष दृष्टि न करे ।

यदि सद्गुरु अपना जीवन राजसी ढंग से रखे तो उन्हें **ब्रह्मा** रूप ही जाने । क्योंकि प्रवृत्ति प्रधान प्रारब्ध, उनके वर्तमान जीवन का हेतु है, लेकिन दोष दृष्टि न करे ।

यदि सद्गुरु अधिकांश मौन रहे तो उन्हें **शुकदेव** वत जानें । क्योंकि निवृत्ति प्रधान प्रारब्ध उनके वर्तमान जीवन का हेतु है, लेकिन उन्हें अहंकारी रूप न जाने ।

यदि सद्गुरु अपनी बात निश्चय में अविचल है तो मर्यादा पुरुषोत्तम **राम** वत् जाने । किसी भी अवस्था में उन्हें अभिमानी, जिद्दी, संसारी

मानव न माने ।

यदि लोक कल्याणार्थ धन संग्रह करते दिखाई पड़े तो उन्हे **वामन भगवान** रूप ही देख किन्तु उन्हें लोभी जान निन्दा न करें ।

यह तन विष की बेल है, गुरु अमृत की खान ।
शीष कटाये भी मिले, तो भी सस्ता जान ॥

इन्द्रियों का स्वभाव

पटुता : इन्द्रियों का अपना-अपना व्यवहार सुनना, देखना आदि ठीक-ठीक करना उनका पटुताधर्म कहलाता है ।

मन्दता : इन्द्रियों का अपने-अपने विषय में पूर्णता न होना, कम होना, ठीक काम न करपाना, मन्दता धर्म कहलाता है । जैसे कम सुनना, कम दिखइ देना ।

अन्धता : इन्द्रियों का अपना कार्य बिलकुल नहोना अंधता धर्म कहलाता है जैसे अन्धा हो जाना, बेहरा हो जाना, मुक हो जाना, नपुंसक हो जाना इत्यादि ।

द्रव्य शक्ति

जीव के पास जाग्रतावस्था में क्रिया शक्ति, स्वप्न में ज्ञान शक्ति एवं सुषुप्ति में द्रव्य शक्ति होती है । अर्थात् जाग्रत, स्वप्नादि अवस्था के अनुकूल पदार्थों के उत्पन्न होने योग्य कारण रूप शक्ति जैसे घड़ा, सुराही, दीपक, ईंटा, बनने से पूर्व मिट्टी का पिण्ड रूप रहना उन-उन बर्तनों की द्रव्य शक्ति कहलाती है ।

अन्वय

वह सत्ता जिसकी उपस्थिति हर अवस्था में विद्यमान रहती है । जैसे पुष्पमाला में सूत्र, अलंकारों में स्वर्ण अपरिच्छिन्न है । इसी तरह

प्रत्येक अवस्था, काल, देश, क्रिया, में मैं आत्मा अपरिच्छिन्न रहता है अर्थात् सदा रहता है, यह आत्मा का अन्वयपना कहलाता है ।

व्यतिरेक

वह सत्ता जिसकी प्रतीति अपने ही समय में हो अन्य समय, अन्य काल, अन्य देश में न हो वह व्यतिरेकी कहलाती है । जैसे बाल, युवा, वृद्ध । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था अपने अपने समय पर ही पाई जाती है अन्य काल में नहीं । इनका परस्पर व्यतिरेक पना है एवं मेरे साथ परिच्छिन्नता है ।

श्रवण

वेदों के महावाक्य 'तत्त्वमसि' आदि का सोऽहम्, शिवोऽहम् रूप तात्पर्य से ग्रहण करना श्रवण कहलाता है । इससे प्रमाणगत संशय दूर हो जाता है ।

मनन

अभेद की साधक तथा भेद की बाधक युक्तियों द्वारा जीव ब्रह्म की एकता का चिन्तन करना, मनन कहलाता है । इससे प्रमेयगत संशय दूर हो जाता है ।

अभेद की साधक युक्ति

जिन युक्तियों द्वारा जीव-ब्रह्म के अभेद निश्चय करने में सहयोग मिलता है, उन्हें अभेद की साधक युक्ति कहते हैं । जैसे अनेक अलंकार एक स्वर्ण मात्र ही है । भिन्न-भिन्न घटाकाश एक अखण्ड महाकाश ही है । भिन्न-भिन्न मकानों यन्त्रों में होने वाली बिजली एक ही है, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न शरीर में प्रतीत होने वाली चैतन्य आत्मा एक अखण्ड सर्व व्यापक है ।

भेद की बाधक युक्ति

जिन युक्तियों द्वारा जीव ब्रह्म के प्रति हुई भेद भ्रान्ति को दूर करने में सहयोग प्राप्त हो, उसे भेद की बाधक युक्ति कहते हैं । जैसे एक सूर्य का अनेक जल पात्रों में अनेक प्रतिविम्ब । एक पुरुष का अनेक दर्पणों में अनेक प्रतिविम्ब । ऐसे ही अनेको अन्तः करण में एक चैतन्य का प्रतिविम्ब नाना आत्मा की भ्रान्ति करा देता है, किन्तु सूर्यवत् आत्मा अद्वितीय है ।

निदिध्यासन

आत्माकार वृत्ति का प्रवाह और अनात्माकार वृत्ति का मन से तिरस्कार अर्थात् स्वीकार न करने को निदिध्यासन कहते हैं । इससे विपर्यय दोष दूर हो जाता है ।

आत्माकार वृत्ति प्रवाह (चिन्तन)

मैं आत्मा, साक्षी, द्रष्टा, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त१४५

, सच्चिदानन्द, स्वयं प्रकाश, कुटस्थ, निराकार, निर्विकार, एक, अखण्ड, असंग, अजन्मा, अविनाशी, निरवयव, अनामय ब्रह्म हूँ । इस प्रकार की बुद्धि में धारणा, चिन्तन करने को आत्माकार वृत्ति का प्रवाह कहते हैं ।

अनात्माकार वृत्ति तिरस्कार

मैं मनुष्य, स्त्री, पुरुष, नपुन्सक, बालक, युवा, वृद्ध, लम्बा, नाटा, दुर्बल, मोटा, रोगी, निरोगी, भूखा-प्यासा, सुखी-दुःखी, बद्ध-मुक्त, चंचल-शान्त, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, संन्यासी, हिन्दु, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शुद्र, मारवाड़ी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, बिहारी, मद्रासी, मुल्तानी, सिन्धी, मराठी, पिता-माता, पति-पत्नी, लड़का, लड़की हूँ इस बात का मन से अस्वीकार करते रहना अनात्माकार वृत्ति का तिरस्कार कहलाता है ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। गीता : २/
२०

मैं आत्मा न कभी जन्म लेता हूँ न कभी मरता हूँ । इस देह के पहले मैं था तथा इस देह के बाद भी मैं रहता हूँ । मैं आत्मा नित्य, शाश्वत, अजन्मा, अविनाशी, हूँ । इस देह के जन्म से मेरा जन्म नहीं तथा देह के नाश होने से मेरा कभी नाश नहीं है । क्योंकि मैं अजन्मा, अविनाशी आत्मा हूँ ।

घट द्रष्टा घटाद भिन्नः सर्वथा न घटो यथा
।
देह द्रष्टा तथा देहो नाहमित्यवधारयेत ।।

– वाक्यवृत्ति

जैसे घड़े को देखने वाला द्रष्टा पुरुष दृश्य घट से भिन्न होता है और वह कभी भी अपने को कि 'मैं घड़ा हूँ' इस प्रकार नहीं मानता है । इसी प्रकार देह का द्रष्टा जो मैं आत्मा देह से भिन्न हूँ, कदापि देह रूप नहीं हो सकता । यह निश्चय करना ही मुक्ति रूप वास्तविक ज्ञान है । इसके अतिरिक्त अपने को देह संघात रूप निश्चय करना ही बन्धन का हेतु है ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम् ।।

– गीता : १३/२

ज्ञान का साक्षात अन्तरंग साधन

किसी श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके मुख से वेदों के महावाक्यों का तात्पर्य सहित श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करना ही ज्ञान का साक्षात्

अन्तरंग साधन है ।

ज्ञान के साधन की सीमा

देह भाव की तरह, मैं ब्रह्म अजन्मा, अविनाशी, मुक्त हूँ ऐसी दृढ़ भावना जाग्रत होजाना ही ज्ञान की पूर्णता है ।

ज्ञान के बहिरंग साधन सीमा

जिज्ञासु को निष्काम भाव से कर्म, उपासना साधन करने से चित्त की शुद्धि होकर आत्मा को जानने की जब जिज्ञासा उदय हो जाती है, तब स्थूल कर्म, भक्ति छोड़ वेदान्त तत्त्व का ही श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिये, किन्तु गरीबों की सेवा, विकलांग को सहायता, रक्तदान, नेत्र दानादि जैसे कर्म निष्काम भाव से करते रहना चाहिये इससे मन निर्मल बना रहता है ।

तत्त्वज्ञान

''जो ब्रह्म है वह मैं हूँ, अथवा मैं हूँ वही ब्रह्म है'' ऐसा अभेद निश्चय करना ही तत्त्वज्ञान है । ऐसा दृढ़ निश्चय करने से समस्त दुःखों की कारण सहित निवृत्ति एवं नित्य प्राप्त परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष होता है ।

ईश्वर कृपा

उत्तम देव दुर्लभ मनुष्य देह की प्राप्ति, चिन्ता रहित शरीर निर्वाह का साधन, ज्ञान सम्पादन करने की सामग्री रूप साधन चतुष्ट्य एवं अनेक जन्मों में किये वैदिक निष्काम शुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप ईश्वर की कृपा से श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वेदान्त शास्त्र के यथार्थ ज्ञाता सद्गुरु की प्राप्ति हो जाना यह सब ईश्वर कृपा कहलाती है ।

''बड़े भाग्य पाइव सतसंगा''
''बिन हरि कृपा मिलहि न संता''
''कबहुँक करि करुणा नर देही''

गुरु कृपा

शिष्य के प्रति गुरु के मन में उद्धार की भावना का जाग्रत होना एवं जिज्ञासु के बुद्धि में प्रवेश हो सके इस प्रकार की सरल सहज युक्ति, द्रष्टान्त तथा प्रमाणों द्वारा उसे आत्मा परमात्मा की, जीव–ब्रह्म की एकता का ज्ञान कराकर सोऽहम्, अहं ब्रह्मास्मि आत्म बुद्धि करा देना ही गुरु कृपा कहलाती है ।

वेद कृपा

शास्त्र अर्थ के तात्पर्य को बुद्धि ग्रहण कर सके यह वेद कृपा कहलाती है । शास्त्रों के शब्दजालों में ही न फंसा रहे ।

आत्मकृपा

अपने मन में अपने कल्याण की तीव्र इच्छा होने पर सद्गुरु की शरण में साधन चतुष्टय हो कर जाने एवं सद्गुरु को ब्रह्म रूप जान उनकी श्रद्धा,भक्ति एवं तितिक्षा पूर्वक सेवा करना, उनके उपदेशामृत का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना,आत्म कृपा या मन की कृपा कहलाती है ।

उपरोक्त चारों कृपा होने से जीव इसी जीवन में ब्रह्मात्म भाव को प्राप्त हो जिवन् मुक्त स्थिति प्राप्त करलेता है । एवं देह त्यागोपरान्त कैवल्य मोक्ष विदेह मुक्ति को सहज ही प्राप्त करलेता है । जैसे वृक्ष से गिरा फल पृथ्वी को सहज प्राप्त कर लेता है ।

उपादान कारण

वह मूल आधार वस्तु जिसके बिना कार्य की सिद्धि अथवा प्रतीति रूप उत्पत्ति ही न हो सके जो नाम, रूप, कार्य रूप में सदा विद्यामान रहती है , वस्तु का मूल उपादान कारण कहलाता है । जैसे घड़े के लिये मिट्‌टी, अलंकार के लिये स्वर्ण, जगत के लिये आत्मा।

निमित्त कारण

वह सहयोगी कारण जिसकी सहायता से कार्य का निर्माण होता है, एवं कार्योत्पत्ति के बाद कार्य से अगल रहता है । जिसके नाश से भी कार्य का नाश न होसके, उसे निमित्त कारण कहते हैं । जैसे घड़े बनने में कुम्भार, दण्ड, चक्र, अग्नि, पानी इत्यदि ।

अभिन्निमित्तोपदान कारण

वह कारण जो कार्य की उत्पत्ति के लिये उपादान एवं निर्माण कार्य में सहयोगी भी बना रहता है, उसे अभिन्न निमित्त उपादान कारण कहते हैं । जैसे मकड़ी जाले के लिये उपादान कारण एवं निमित्त कारण है । इसी प्रकार ईश्वर सृष्टि का उपादना एवं निमित्त कारण कहलाता है ।

त्रिताप

आधिदेविक **आधिभूतिक**
आध्यात्मिक

आधि देविक दुःख

शरीर से भिन्न इन्द्रियों द्वारा दिखाई न पड़ने वाले दुःख को कहते हैं । जैसे भूकम्प, अतिवृष्टि, देव कोप, अनावृष्टि आदि ।

आधि भोतिक दुःख

शरीर से भिन्न इन्द्रियों द्वारा जानने में आने वाले दुःख जैसे- भूख-प्यास, शीत-उष्ण, चोर, व्याघ्र, सांप, शारीरिक रोग स्त्री,

पति पुत्रादिक से प्राप्त कष्ट है ।

आध्यात्मिक दुःख

आत्मा का आश्रय करके रहने वाले स्थूल, सूक्ष्म शरीर सम्बन्ध से उत्पन्न दुःख को कहते हैं । जैसे चिन्ता, गरीबी, क्रोध, ईर्ष्या, काम, बुद्धिमंदता, इन्द्रिय ठीक काम न करना, शारीरिक दुर्बलता आदि ।

आधि–व्याधि

मानसिक चिन्ता से उत्पन्न दुःख **आधि** एवं शारीरिक असमर्थता से उत्पन्न दुःख **व्याधी** कहलाता है ।

स्थूल शरीर

पंचीकृत पंच भूतों को यह २५ तत्त्व वाला शरीर स्थूल शरीर कहलाता है । जिसमें पूर्व किये कर्मों का सुख–दुःख रूप में भोग एवं आगामी फल भोग के लिये नूतन कर्म किये जाते है । इसे भोगायतन भी कहा जाता है ।

सूक्ष्म शरीर

अनादि अपचींकृत भूतों के १९ तत्त्वों वाले शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं । इसे प्रतिविम्ब रूप जीव, चिदाभास, लिंग–शरीर, भी कहते हैं । यही मानव स्थूल देह में रहकर शुभ अशुभ कर्मों को करता रहता है एवं ८४ लाख योनियों में देहान्तर प्राप्ति करता हुआ फल भोग करता रहता है ।

आकर चार लक्ष चौराशी ।

योनि भ्रमत यह जीव अविनाशी ।। (रामायण)

कारण शरीर

अज्ञान को ही कारण शरीर कहते हैं । क्योंकि स्थूल तथा सूक्ष्म देह में जीव को भ्रमित कराने वाला यह अज्ञान ही है । इसीलिये स्थूल, सूक्ष्म देहों का कारण होने से इसे कारण शरीर कहते हैं । मैं आत्मा को नहीं जानता, मैं अपने को नहीं जानता । मेरी तो मुझे ही खबर नहीं है । इत्यादि कथन कारण शरीर है।

महाकारण शरीर

इन्द्रियों का अविषय, सद्गुरु से प्राप्त ज्ञान द्वारा बुद्धि में मैं द्रष्टा, साक्षी, असंग ब्रह्म हूँ । ऐसी नूतन मनोवृत्ति जाग्रत होने को महाकारण शरीर कहते हैं । जो जीवों को चौरासी लाख योनियों में भटकाने वाले स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर का नाश करने वाले है । जीव को वर्तमान काल में जीवन्मुक्ति एवं देह त्याग पर कैवल्य मुक्ति प्रदान कराने में हेतु है ।

अर्थाध्यास

जहाँ विषयवस्तु के दर्शन में जो भ्रम प्रतीति हो उसे अर्थाध्यास कहते हैं । जैसे रस्सी के स्थान में सर्प का भासमान होना ।

ज्ञानाध्यास

जहाँ बुद्धि में वस्तु का यथार्थ बोध न होकर अयथार्थ ज्ञान होता है उसे ज्ञानाध्यास कहते हैं । जैसे रस्सीज्ञान के स्थान पर बुद्धि में सर्प ज्ञान का उदय होना ।

सम्बन्ध या संसर्गाध्यास

यथार्थ वस्तु का धर्म अयथार्थ वस्तु में प्रतीत होना सम्बन्ध अध्यास या संसर्गाध्यास कहलाता है। जैसे सूर्य का प्रकाश ग्रहण कर चन्द्रमा प्रकाश रूप प्रतीत होता है ।

स्वरूपाध्यास

जब अयथार्थ वस्तु का धर्म यथार्थ वस्तु पर आरोपित कर दिया जाता है, उसे स्वरूपाध्यास कहते हैं । जैसे प्रकाश रहित चन्द्रमा अपना अन्धकार रूप धर्म प्रकाश स्वरूप सूर्य में सूर्य पराग (सूर्य ग्रहण) का भान करादेता है। या पृथ्वी अपनी गति को अचल सूर्य में उदय अस्त का भ्रम करा देती है ।

ब्रह्म का ईश्वर के साथ अध्यास

सत्य ब्रह्म का मिथ्या ईश्वर के साथ संसर्गाध्यास होने के कारण ईश्वर-मिथ्या होते हुए भी बुद्धि में ईश्वर के प्रति सत्य निष्ठा होती है ।

ईश्वर का ब्रह्म के प्रति अध्यास

सृष्टि कर्ता ईश्वर का निष्क्रिय असंग ब्रह्म के साथ स्वरूप अध्यास होने के कारण निष्क्रिय ब्रह्म सृष्टि कर्ता प्रतीत होता है ।

आत्मा का जीव के साथ अध्यास

सत्यात्मा का मिथ्या जीव के साथ संसर्गाध्यास होने के कारण जीव के प्रति सत्य बुद्धि हो जाती है ।

जीव का आत्मा के साथ अध्यास

कर्ता-भोक्ता जीव का अकर्ता-अभोक्ता आत्मा के साथ स्वरूप अध्यास के कारण मैं कर्ता एवं भोक्ता हूँ ऐसी भ्रान्त बुद्धि हो जाती है ।

तादात्म्य अध्यास

परस्पर के अध्यास को तादात्म्य अध्यास कहते हैं । इसे चिद्-जड़ ग्रन्थि व अन्योन्याध्यास भी कहते हैं । अन्तःकरण का आत्मा के साथ अन्योन्याध्यास होने के कारण आत्मा के सत चिद् धर्म असत्, जड़ अन्तःकरण एवं शरीर में मान लिये । अनात्मा के दुःख, द्वैत धर्मों को आत्मा के आनन्द, अद्वैत धर्म में मान लिया, अथवा अन्तःकरण के कर्ता-भोक्ता धर्मों को आत्मा में मान लिया जाता है कि मैं कर्ता-भोक्ता हूँ ।

जैसे लोहे का गोला अग्नि में तपा देने से लाल हो जाता है अब यहाँ लोहे की गोलाई अग्नि में प्रतीत होती है कि अग्नि गोल है । एवं जलना अग्नि का धर्म लोहे के गोले में मान लिया है कि लोहे का गोला जलाता है । इस प्रकार के तादात्म्य अध्यास को अन्योन्याध्यास कहते हैं ।

वृत्ति

शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध होने को वृत्ति कहते हैं ।

शक्यवृत्ति

शब्द का अर्थ के साथ जो सीधा सम्बन्ध है उसे शब्द की शक्ति वृत्ति या शक्य वृत्ति कहते हैं ।

लक्षणा वृत्ति

शब्द का अर्थ के साथ सीधा सम्बन्ध न हो उसके परम्परा से सम्बन्ध जोड़ने से जहाँ अर्थ प्रकट होता है उसे लक्षणा वृत्ति कहते हैं ।

जहती लक्षणा

जहाँ कहे हुए सम्पुर्ण वाच्यार्थ का त्याग करके उसके

सम्बन्धी अर्थ का ग्रहण किया जाता है, उसे जहती लक्षणा कहते हैं । जैसे आटा पिसाना, बेसन पिसाना, बर्फ जमाना, दही जमाना, स्टेशन आ रहा है, स्टेशन चला गया, स्टेशन छुट गया, नल चला गाया, पंखा चला गया, लाइट चली गई, चोका उठादो, दुध का ग्लास, टट्टी का लोटा, कुत्ते की रोटी, पिताजी की चाय वनाओ, माताजी की रोटी मनादो ।

अजहती लक्षणा

जहाँ कहे वाच्यार्थ से अर्थ प्रकट नहीं होता है, बल्कि उस वाक्य के सम्बन्धी अर्थ को और जोड़ कर अर्थ स्पष्ट होता है, उसे अजहती लक्षणा कहते हैं । जैसे काली ने बच्चे दिये । सफेद मर गया, लाल कट गई, लाल दोड़ता है । इन्हें समझ ने हेतु सम्बन्धी अर्थ का और मिलया जाता है जैसे काली कुतियाने बच्चे दिये । सफेद कुत्ता मरगया । लाल पंतग कटगई । लाल घोड़ा तेज दाड़ता है ।

भाग त्याग (जहतजहती) लक्षणा

जहाँ वाच्यार्थ में विरोध प्रकट होता है तब उसके विरोधी अंश का त्याग कर अविरोधी अंश को ही ग्रहण किया जाता है, उसे भाग त्याग लक्षणा कहते हैं । जैसे : यह वही मीरा है । यह वही गाँधी है । यह वही बेबी है । यह वही है । 'जीवो ब्रह्मैव' 'तत्त्वमसि', वह तु है । यहाँ अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ ईश्वर के चिदाभास धर्म में भेद है । इससे एकता सिद्ध नहीं होती है तो इस भेद का त्याग कर चेतन साक्षी आत्मा में एकता मानना है ।

चिदाभास

जो चैतन्य न होते हुए भी चैतन्य की तरह प्रतीत हो उसे

चिदाभास कहते हैं । जैसे अन्तःकरण में चैतन्य आत्मा के प्रतिविम्ब को चिदाभास या जीव कहते हैं । जल पात्र में सूर्य या मुख के प्रतिविम्ब को सूर्याभास या मुखाभास कहते हैं ।

चिदाभास के भेद

	अविद्या	**माया**
१)	अल्पज्ञ	सर्वग्य
२)	अल्पशक्तिवान	सर्व शक्तिवान
३)	पराधीन	स्वतंत्र
४)	मायाधीन	मायाधीश
५)	बद्ध	मुक्त
६)	दुःखी	आनन्द
७)	कर्ता–भोक्ता	फलदाता
८)	अपरोक्ष	परोक्ष
९)	परिच्छिन्न	अपरिच्छिन्न
१०)	अज्ञान	ज्ञान
११)	अनेक	एक
१२)	जीव	ईश्वर

बाधितानुवृत्ति

तत्त्वज्ञान से मिथ्या प्रतीति का बाध हो जाने पर भी उसकी प्रतीति होते रहने को बाधितानुवृति कहते हैं । जैसे कि मरूस्थल में जल, मदं अन्धकार में पड़ी रस्सी में सर्प, सूर्य प्रकाश में पड़ी सीप में चाँदी, दूरस्थ कटे वृक्ष में विराट पुरुष । आत्म ज्ञान होने पर भी मैं जाता

हूँ, मैं खाता हूँ, मैं सुखी इत्यादि कथन ।

मरुस्थल में जल नहीं है फिर भी सूर्य के प्रकाश में महान् जलाशय रूप में वह प्रतीत होता है । पानी की इच्छा वाला उसके समीप जाता है वह पानी उससे दूर ही दूर भासमान होता जाता है । तब पथिक को बोध होता है कि यह वास्तव में जल नहीं है, यह भ्रान्ति है । फिर भी वह जल की भासमानता बनी रहती है । लेकिन यथार्थ बोध के पूर्व उस जल के प्रति जैसी सत्य बुद्धि हो रही थी यथार्थ बोध उपरान्त वह जल भासने पर भी उस जल को प्राप्त करने का आकर्षण नहीं रहता ।

इसी प्रकार अज्ञान काल में व्यवहार दशा में जैसे कहा जाता है कि –'मैं जा रहा हूँ', 'मैं खा रहा हूँ', मैं मोटा हो गया, मैं दुःखी हो गया इत्यादि ।

जब सद्गुरु कृपा द्वारा यह बोध हो जाता है कि मैं देह संघात् के धर्मों से पृथक् मात्र साक्षी आत्मा हूँ, तब भी अज्ञान काल वत् बाधितानुवृत्ति द्वारा आत्म ज्ञान होन के बाद भी व्यवहार काल में यही कहता है कि मैं जा रहा हूँ, मैं खा रहा हूँ, मैं दुर्बल हो गया । किन्तु ज्ञानी यह जानता है कि देह, प्राण, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण के धर्मों से मैं सर्वथा असंग हूँ ।

परन्तु जब अज्ञानी कहता है कि मैं जाता हूँ, मैं खाता हूँ, मैं भूखा हूँ, मैं अशान्त हूँ, मैं कम सुनता हूँ, मैं अन्धा हूँ, मैं लंगड़ा हूँ इत्यादि तब वह अपने को पूरा-पूरा देह, प्राण, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण के साथ तादात्म्यता (एकता) कर के ही कहता है और यही जीव के जन्म मरण का हेतु है ।

मुख्य समानाधिकरण

जिस वस्तु का जिस वस्तु के साथ निरन्तर सम्बन्ध रहे, उस वस्तु का मूल वस्तु से मुख्य समानाधिकरण होता है । जैसे घटाकाश

का मठाकाश से नित्य सम्बन्ध बना रहता है । उसी प्रकार कूटस्थ आत्मा का परमात्मा के साथ मुख्य समानाधिकरण है ।

बाध समानाधिकरण

जिस वस्तु का बाध होने पर उसका मुख्य वस्तु से सम्बन्ध अर्थात् एकता होती है, उसे बाध समानाधिकरण कहते हैं । जैसे प्रतिविम्ब का बाध करके विम्ब के साथ अभेद निश्चय किया जाता है। उसी प्रकार चिदाभास जीव का अविद्या उपाधि से बाध करके चिदात्मा ब्रह्म के साथ जो अभेद निश्चय किया जाता है उसे बाध समानाधिकरण कहते हैं।

वृत्ति व्याप्ति

विषय ज्ञान हेतु प्रथम अन्तःकरण की वृत्ति इन्द्रिय द्वार से बाहर देश में जाकर जिस वस्तु क बोध करना होता है सर्व प्रथम उस विषय तक पहुँच उस आकार को धारण करती है, उसे वृत्ति व्याप्ति कहते हैं । जैसे अन्धकार में रखा घड़ा पर प्रकाश पहुँचने पर प्रकाश उस आकृति के रूप में ढलजाता है किन्तु क्या वस्तु है यह वोध नहीं होता है ।

फल व्याप्ति

फिर वृत्ति व्याप्ति के पश्चात विषय चैतन्य एवं वृत्ति चैतन्य का अभेद हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप पदार्थ का ज्ञान होता है । जिसे फल व्याप्ति कहते हैं। जैसे नेत्र द्वारा प्रकाशित वस्तु को पहचानना कि यह घड़ा है।

आत्मानुभुति

केवल वृत्ति व्याप्ति द्वारा आत्मा को आच्छादित करने वाले

आवरण को ही भंग किया जाता है । आत्मा को प्रकाशित करने के लिये अन्य फल व्याप्ति की आवश्यकता नहीं रहती । क्योंकि आत्मा स्वयं प्रकाश है । जैसे प्रकाश रूप मणि किसी वस्तु से ढकी पड़ी हो तो उस आवरण को हटाने (वृत्तिव्याप्ति) मात्र से मणि का बोध स्वयं से ही हो जाता है । उसे देखने हेतु अन्य प्रकाश रूप फल व्याप्ति की जरुरत नहीं रहती । इसी प्रकार आत्मा को आच्छादित करने वाले पंच कोश, तीन अवस्था के आवरण को हटाने की ही आवश्यकता होती है । इसके हटते ही आत्मा को प्रकाशित करने हेतु फल व्याप्ति की जरुरत नहीं रहती, क्योंकि आत्मा स्वयं प्रकाश वस्तु है । अथवा बादलों के आवरण से सूर्य दर्शन नहीं होता है, बादलों के हटते ही सूर्य अन्य प्रकाश की अपेक्षा किये बिना स्वयं से ही दिखाई पड़ता है ।

उपाधि

वह वस्तु जो लक्ष पदार्थ को बतलाती है एवं स्वयं भी लक्ष वस्तु से पृथक रहती है उसे मुख्य वस्तु पहचान की उपाधि कहते हैं । जैसे बन्दर वाला मकान, कोवे वाला मकान, गाय, कुत्ता, स्कुटर, साईकल, बच्चा, वृक्ष वाला मकान। या टोपी, पगड़ी, लाठी, दाढ़ी, बड़ी मुंछ, लाल स्वेटर, पीली पगड़ी वाला या पीली, काली, लाल, सफेद साड़ी वाली । इसी प्रकार परमात्मा को पहचानने हेतु नाम-रूप उपाधि या उपलक्षण है । उपाधि, उपलक्षण केवल हमारे लक्ष वस्तु या व्यक्ति को बताने में सहयोग करते हैं । जब हमारी दृष्टि लक्ष वस्तु तक पहुँच जाती है, तब उस उपाधि के हट जाने से हमारी कोई हानि नहीं, क्योंकि उस उपाधि वस्तु का लक्ष वस्तु से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था । धनुष, मुरली, शंख, चक्र, गदा, पद्म, त्रिशुल, सूंड, उल्लू, सिंह, सांड (नन्दी) चुहा आदि सभी

उपाधियाँ है ।

उपहित

उपाधि द्वारा जिस मुख्य वस्तु की पहचान हो ती है, उस वस्तु को उपहित कहते है । जैसे अन्तःकरण उपाधि वाले चैतन्य को अन्तःकरण उपहित चैतन्य कहते हैं । अथवा साक्षी कहते हैं ।

विशेषण

वह लक्षण जो लक्ष्य वस्तु या व्यक्ति को अन्य सभी से पृथक् बताता है एवं स्वयं लक्ष्य वस्तु के साथ सदा अभिन्न रूप से बना रहता है । जैसे काली गाय, सफेद कुत्ता, मंजरी आंख, यहाँ काला, सफेद, मजंरी लक्षणों ने अन्य रंग एवं आंख से अपनी पहचान करादी एवं उन रंग व आंख का उन वस्तु या व्यक्ति में सदा अभेद बना रहता है । यहाँ काला, सफेद, मंजरी लक्षण तो गाय, कुत्ता एवं महिला को पहचाने का विशेषण है । इसी प्रकार आत्मा को पहचान ने में नाम-रूप देह तो उपाधि है एवं सच्चिदानन्द आत्मा के विशेषण है । जो आत्मा के साथ सदा अभिन्न रूप में रहते हैं ।

विशेष्य

विशेषण द्वारा जो वस्तु जानी गई है उसे विशेष्य कहते हैं जैसे काली गाय, सफेद कुत्ता, मंजरी लड़की, इसी प्रकार सच्चिदानन्द आत्मा है ।

विशिष्ट

विशेषण व विशेष्य दोनों को मिलाकर विशिष्ट कहलाता है । जैसे काली गाय, इसमें 'गाय' विशेष्य है तथा 'काली' विशेषण दोनों मिले हुए हैं ।

अनिर्वचनीय

वह प्रतीति जिसे आत्मा की तरह सत्य नहीं कहा जा सकता है, न ब्रध्या पुत्र की तरह असत् ही कहा जा सकता है, उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। जैसे माया। यह आत्मा की तरह तीनों कालों में रहने वाली भी नहीं है, इसीलिये उसे सत्य नहीं कहा जा सकता है। तथा उसे ब्रध्या पुत्रवत् पूर्ण असत्य भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्रत्यक्ष में दुःख का हेतु है एवं ब्रह्म ज्ञान द्वारा इसका बोध भी होता है । असत् पदार्थों का तो तीनों कालों में सद्भाव नहीं रहता है। किन्तु माया, अविद्या, अज्ञान तो आत्मा के अज्ञान होने तक जीव को संसार चक्र में भ्रमित करा दुःख के हेतु हैं ।

सत्संग

सत् + संग = सत्संग

सत् = जिसका कभी नाश न हो अर्थात् आत्मा ।

संग= साथ (सोऽहम् रूप ध्यान)

आत्मा निराकार होने से उसका अन्य पदार्थ की प्राप्ति की तरह साथ नहीं होगा । आत्मा नित्य प्राप्त स्वरूप है । इसलिये उसका अनुभव स्व रूप में ही हो सकेगा । भिन्न रूप में दर्शन या अनुभव अनित्य पदार्थों का ही हो सकता है । अस्तु सत्संग का तात्पर्य है "**सोऽहम्**" रूप में बुद्धि की धारणा हो जाना ।

जड़

वह अनात्म पदार्थ जिसे 'स्व','पर' अपने व अन्य का बोध न हो, जड़ कहलाता है । जैसे कलम, प्रकाश, शरीर, घड़ी, अलंकार, वस्त्र इत्यादि ।

दृश्य

वह अनात्म पंच भौतिक विषय जगत्, जो दिखाई पड़ता है, दृश्य कहलाता है । जैसे देह संघात् एवं जगत् ।

द्रष्टा

सबको देखने वाले चैतन्य आत्मा को अन्तःकरण उपाधि के कारण द्रष्टा कहते हैं । जैसे समस्त दृश्यों का प्रकाशक, मैं ।

घटाकाश

घट के द्वारा अवच्छिन्न आकाश को घटाकाश कहते हैं ।

मठाकाश

मठ के द्वारा घिरे आकाश को मठाकाश कहते हैं ।

आत्मा

चैतन्य को आत्मा कहते हैं, जैसे मैं ।

आत्मा के लक्षण

शस्त्र से कटता नहीं, अग्नि से जलता नहीं, पानी से भीगता नहीं, पवन से सूख पाता नहीं ऐसे नित्य, अखण्ड, अविनाशी वस्तु को आत्मा कहते हैं ।

आत्मा का स्वभाव (विशेषण)

सत्-चित्-आनन्द तथा अद्वैत स्वभावी होती है ।

अनात्मा

जड़ को अनात्मा कहते हैं, जैसे - मेरा शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि आदि ।

अनात्मा के लक्षण

जो शस्त्र द्वारा कट जाता है, अग्नि द्वारा जल जाता है । पानी द्वारा भीग जाता है तथा पवन द्वारा सूख जाता है। ऐसे नाशवान,

अनित्य, विकारी वस्तु को अनात्मा कहते हैं । जैसे शरीर एवं जगत के पदार्थ ।

अनात्मा के विशेषण

असत्, जड़, दुःख तथा द्वैत स्वभावी होता हैं ।

अखण्ड

जो सब देश, काल तथा वस्तु रूप में विद्यमान रहे, उसे अखण्ड कहते हैं । जैसे आत्मा अर्थात् मैं । क्योंकि मैं के बिना न किसी देश की सिद्धि होती है, न काल की सिद्धि होति है, न किसी रूप की सिद्धि होती है । इसलिये मैं ही अखण्ड है ।

मैं का अन्य नाम

मैं = द्रष्टा, ज्ञाता, प्रमाता, जीव, आत्मा, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत, चित, आनन्द, स्वयं प्रकाश, साक्षी, असंग, अधिष्ठान, विवर्त, ब्रह्म, परमात्मा, अंशादि ।

देह संघात

अन्तःकरण चतुष्ट्य	:	मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ।
ज्ञानेन्द्रिय पंचक	:	श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ।
कर्मेन्द्रिय पंचक	:	वाक् पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा ।
प्राण पंचक	:	व्यान,समान, उदान, प्राण,अपान ।

उपरोक्त १९ तत्त्वों को देह संघात कहते हैं ।

स्वयं प्रकाश

वह अलुप्त प्रकाश जो अन्य किसी से प्रकाश की अपेक्षा नहीं करते हुए सभी आनात्म दृश्य जगत को निरन्तर प्रकाशित करता रहता है, स्वयं प्रकाश कहलाता है । जैसे ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा, मैं ।

परम प्रकाश रूप दिन राती ।

विषय करण सुर जीव समेता ।
सकल एक ते एक सचेता ।।

सबकर परम प्रकाशक जोई ।
राम अनादि अवध पति सोई ।।

पर प्रकाश

जो अपने होने के लिये दूसरों की अपेक्षा रखता है । स्वयं से स्वयं को नहीं जानता है उसे परप्रकाश कहते हैं । जैसे गुलाव का पुष्प, घड़ी का टाईम्, सूर्य, सर्दी, गर्मी, सुख–दुःख, भूख–प्यास, आंख, कान, शरीर, मन, प्राण, ईश्वर, देवता, ध्यान, समाधि, ज्योति, सोऽहम् नाद, स्वपन,जाग्रत, सुषुप्ति, मुच्र्छा इत्यादि ।

परम प्रकाश रूप दिन राती, नहि चाहिय दिया घृत बाती ।

साक्षी

अन्तःकरण देश में घिरे हुए चैतन्य को साक्षी कहते हैं । जो समस्त इन्द्रियों को प्रकाशित करके भी स्वयं उन इन्द्रियों के धर्म से अलिप्त रहता है ।

साक्षी का लक्षण

चेतन, समीप तथा उदासीन सत्ता को साक्षी कहते हैं । जो न किसी शुभाशुभ का कर्ता बनता है न किसी कर्म फल सुख–दुःख का भोक्ता रहता है । अन्तःकरण की वृत्ति में चैतन्यात्मा के प्रतिविम्ब को जीव कहते हैं । यही कर्मों का कर्ता एवं फलों का भोक्ता है ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य– नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

मुण्डक : ३/१/१, श्वेता : ४/६

एक ही देह रूप वृक्ष पर मित्र भाव युक्त दो पक्षी सदा साथ–साथ

निवास करते हैं । इन दोनों पक्षियों में से एक पक्षी जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा है । जीवात्मा तो देह रूप वृक्ष में वास कर अपने पूर्व संचित् कर्म फलों को प्राप्त हो प्रारब्ध भोग करता है तथा आगामी नूतन क्रियामाण करात हुआ चौरासी लाख योनियों में भोगता फिरता रहता है ।

आकर चार लक्ष चौरासी,
योनि भ्रमत यह जीव अविनाशी ।

इस देहरूप वृक्ष पर दूसरा पक्षी परमात्मा है । जो अनाहार रहकर केवल देखता रहता है । वह केवल जीवों के कर्मों व फलों का द्रष्टा एवं साक्षी मात्र है । वह सर्व व्यापक असंग आकाशवत् निर्लिप्त विद्यमान रहता है।

अधिष्ठान

वह आधार वस्तु जिसके विद्यमान होने से ही किसी दोष के कारण, उसकी प्रतीति न होकर उसके सदृश्य किसी देखी वस्तु के संस्कार से अन्य वस्तु होने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है । अर्थात् कुछ का कुछ दिखना । इसे अर्थाध्यास कहते हैं ।

जैसे मन्द अन्धकार में पड़ी रस्सी में नेत्र द्वारा स्पष्ट रूप दर्शन न हो पूर्व देखे सर्प के संस्कार उदय होकर पड़ी हुई टेड़ी-मेड़ी आकृति में सर्प का भ्रमोदय हो जाता है । यह पड़ी रस्सी भ्रान्ति से दिखने वाले सर्प का अधिष्ठान है ।

अधिष्ठान के ज्ञान के अभाव काल में ही अध्यस्त भ्रम की उत्पत्ति एवं प्रतीति होती है । अधिष्ठान रस्सी का ज्ञान होते ही अध्यस्त सर्प भ्रम की प्रतीति नहीं होती ।

इस प्रकार आत्मा अधिष्ठान के अज्ञान काल में ही जगत भ्रम दिखाई पड़ता है । सदगुरु कृपा द्वारा अधिष्ठान आत्मा का बोध होते ही यह जगत अदृश्य हो जाता है ।

अज्ञान काल में जगत दृश्य होता है, परमात्मा अदृश्य बना रहता है । ज्ञान होने पर दृश्य जगत अदृश्य हो जाता है एवं अदृश्य परमात्मा सर्वत्र, सर्वरूप, सर्वदा विद्यमान प्रतीत होता रहता है ।

अध्यस्त

अधिष्ठान के अज्ञान काल में अधिष्ठान के सहारे जो भ्रम दर्शन होता रहता है उसे अध्यस्त कहते हैं । अधिष्ठान के ज्ञान काल में उस भ्रान्ति का सर्वथा अभाव हो जाता है, किन्तु अध्यस्त की प्रतीति काल में अधिष्ठान का ज्ञान नहीं हो पाता है । इसी को ज्ञानाध्यास भी कहते हैं अर्थात् 'कुछ का कुछ जान लेना'।

जैसे मन्द अन्धकार में पड़ी रस्सी में रस्सी ज्ञान न होकर अयथार्थ सर्प भ्रम ज्ञान हो जाता है । जब वस्तु रस्सी का यथार्थ ज्ञान, प्रकाश के माध्यम से हो जाता है, तब अयथार्थ सर्प भ्रम ज्ञान एवं उसकी प्रतीति दोनों एक साथ निवृत्त हो जाते हैं ।

अध्यास

अधिष्ठान का समान्य रूप से ज्ञान एवं विशेष रूप से अज्ञान अध्यास का हेतु है । जैसे रस्सी का सामान्य ज्ञान 'यह' रूप से 'इदम्' रूप से तथा 'यह रस्सी है' ऐसा विशेष ज्ञान नहीं होता है तब अध्यास हो जाता है । जब रस्सी का विशेष ज्ञान हो जाता है कि यह रस्सी है तब यह सर्प है ऐसा अध्यास भ्रमज्ञान नहीं होता । अर्थात् भ्रान्ति दर्शन एवं भ्रान्ति ज्ञान को अध्यास कहते हैं ।

क्षेत्र

''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'' - गीता : १३/१

तुलसी यह तन खेत है, मन वच कर्म किसान ।
पुण्य पाप दोउ बीज है, बवे सो लहे निदान ।।

यह शरीर कर्म करने का क्षेत्र 'कुरुक्षेत्र' है । उसमें मन, वचन, कर्म से जो शुभ-अशुभ कर्म किया जाता है, वह जीवात्मा को सुख-दुःख रूप में भोगना पड़ता है । यह शरीर जीवात्मा को अपने कर्म फल भोगने का स्थान होने से भोगायतन भी कहलाता है । यहाँ रहकर जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है ।

क्षेत्रज्ञ

इस देह रूपी क्षेत्र को जो जानने वाला कर्मों का कर्ता-भोक्ता जीवात्मा है, उसी को यहाँ क्षेत्रज्ञ कहा जाता है जो कर्मों का कर्ता एवं फलों का भोक्ता परमात्मा का अंश या प्रतिविम्ब रूप जीवात्मा कहलाता है ।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ।। - गीता : १३/१

अर्थात् इस क्षेत्र शरीर में क्षेत्रज्ञ जो जीवात्मा है वह मैं परमात्मा ही हूँ; क्योंकि विम्ब से प्रतिविम्ब, अधिष्ठान से अध्यस्त, कारण से कार्य, उपादान से विवर्त वस्तु,, व्यापक से व्याप्य, अंशी से अंश कभी भिन्न सत्तावाला नहीं होता है ।

सत्य

जो पदार्थ सदा विद्यमान रहे, जिसका किसी काल में, किसी साधन से अभाव या नाश न हो, ऐसे निर्विकार वस्तु को सत्य कहते हैं । जैसे मैं (आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म) ।

असत्य

सत्ताहीन केवल नाम मात्र को असत्य कहते हैं, जो कहातो जाए किन्तु कभी खोजा न जासके । जैसे नाम, जाति, आश्रम, उम्र, सम्बन्ध,

सातों वार, बारह माह, वर्ष, पारस, सर्प के कान, घोड़े के सींग इत्यादि ।

मिथ्या

वह वस्तु जो सदा एक रस न रहे, परिवर्तनशील, नाशवान, उत्पन्न होने वाली, साधन से कालान्तर, देशान्तर में प्राप्त होने वाले पदार्थ को मिथ्या कहते हैं । जैसे स्वर्ग, वैकुण्ठ,भगवान, संसार, शरीर,इन्द्रिय, मन, जीव इत्यादि ।

सत असत् से विलक्षण वस्तु को अनिर्वचनीय या मिथ्या कहते हैं जैसे जगत, माया । इन्हें ब्रध्या पुत्र, घोड़े के सींग वत असत भी नहीं कह सकते । क्योंकि जीव को संसार दुःख का प्रत्यक्ष हेतु भी है, एवं उसे आत्मा की तरह सत्य भी नहीं कह सकते । क्योंकि ब्रह्मज्ञान से जगत माया का अभाव भी सिद्ध होता है । तब जीव भाव भी ब्रह्म में लय हो जाता है ।

छह सत्ता अनादि विवेक

ब्रह्म,	**माया,**	**सम्बन्ध**
जीव,	**ईश्वर,**	**परस्पर भेद**

उपरोक्त इन छह सत्ता में ब्रह्म केवल अनादि अनन्त है, शेष सभी पांच माया, सम्बन्ध, जीव, ईश्वर तथा परस्पर इनका भेद ब्रह्मज्ञान होने पर केवल एक अखंड ब्रह्मसत्ता ही रहती है शेष का लय होजाता है ।

षड़ आचार्य एवं दर्शन

कणाद	वैशेषिक
गोतम	न्याय
कपिल	सांख्य

पातंजल	योग	
जैमिनि		कर्म (पूर्व मीमांसा)
वेद व्यास		ज्ञान (धर्म या उत्तर मीमांसा, वेदान्त)

पचंभ्रान्ति एवं युक्ति

भेद भ्रान्ति	दर्पण विम्ब, प्रतिविम्ब
कर्ताभोक्ता भ्रान्ति	स्फटिक मणि एवं रंगीन पुष्प या कागज
संग भ्रान्ति	घटाकाश
विकार भ्रान्ति	रस्सी में सर्प
ब्रह्म से भिन्न जगत सत्य भ्रान्ति	स्वर्ण से अलंकार

सद्गुरु

जो पंच भ्रान्तियों एवं तीन संशय से मुक्त कर एक ब्रह्म का *'सोऽहम्', 'शिवोऽहम्', 'अहंब्रह्मास्मि'* रूप में निश्चय कराकर जीव को जीवन मुक्ति का बोध करादेता है । ऐसे श्रोत्रिय- ब्रह्मनिष्ठ उपाधि वाले को सद्गुरु कहते हैं ।

श्रोत्रिय

जो शास्त्रों का ज्ञाता है, शास्त्रों के कर्म, उपासन तथा ज्ञान प्रतिपादित विषय को यथार्थ समझता है एवं प्रमाणों द्वारा जिज्ञासु को समाधान करा भी देता है ।

ब्रह्मनिष्ठ

जिसने गुरु कृपासे ब्रह्म का सोऽहम् रूप से साक्षात्कार कर लिया है । किन्तु यदि वह श्रोत्रिय नहीं है तो जिज्ञासु की शंकाओं का शास्त्र प्रमाणों द्वारा संशय रहित ज्ञान नहीं करा सकेगा ।

अस्तु श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ इन दोनों उपाधियुक्त आचार्य को ही सद्गुरु, पूरागुरु, तत्त्वदर्शी, महाजन, पण्डित्, ब्रह्मदर्शी, देशिक आदि नामों से कहा जाता है ।

त्रिपुटी

अध्यात्म - अधिदेव - अधिभूत के योग को त्रिपुटी कहते हैं ।

अध्यात्म

आत्म आश्रित चौदह इन्द्रियों को अध्यात्म कहा जाता है ।

अधिदेव

देह संघात से भिन्न इन्द्रिय अगोचर, इन्द्रियों के प्रकाशक देवता को अधिदेव कहते हैं ।

अधिभूत

देह संघात से भिन्न इन्द्रिय ग्राह्य शब्द, स्पर्श, रूपादि पंच विषय को अधिभूत कहते हैं ।

सकाम कर्म

जिन कर्मों को, फल भोगेच्छा को लेकर, यश प्राप्त करने की इच्छा से किया जाता है, उन कर्मों को सकाम कर्म कहते हैं । जैसे यज्ञ, दान, तप, पूजा, व्रत, उपवास । ऐसे सकाम कर्मों का फल अनित्य संसार एवं अनित्य स्वर्गादि लोक होते हैं ।

निष्काम कर्म

वह कर्म जो परमात्मा की प्रसन्नता के लिये, जन कल्याणार्थ अनाथ, विकलांग, बधिर, मूक, बूढ़े, बच्चे, विधवा, दरिद्र की

रक्षार्थ बिना फलेच्छा एवं यश के श्रद्धा एवं प्रीति पूर्वक किया जाता है । उसे निष्काम कर्म कहते हैं । जैसे नेत्रदान, रक्तदान, वृक्षारोपण, धर्मशाला, हास्पिटल, स्कूल, अन्नक्षेत्र, गौशाला भोजनालय, कूँवा, तलाब, रास्ता निर्माण, प्याउ इत्यादि ।

उपरोक्त कर्म निष्काम होने से अन्तः करण के मल दोष की निवृत्ति होकर आत्म जिज्ञासा उदय हो जाती है । यदि इस जीवन में ज्ञान प्राप्त होकर मोक्षानुभूति, आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ हा किसी वैराग्य वान ज्ञानीकुल में जन्म धारण कर ज्ञान के सोपान पर आरुढ़ होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

अकर्म

कर्म को प्रकृति का धर्म जान अपने को क्रियामें अकर्ता, फलभोग में अभोक्ता जानना एवं कर्म तथा फल का अपने को साक्षी, द्रष्टा देखने पर कृत कर्म अकर्म अर्थात् निर्बीज रूप हो जाता है । जिससे उसे पुर्नजन्म को ग्रहण नहीं करना पड़ेगा । इसी को योगः कर्म सु कौशलम्' या 'गुणाः गुणेषु वर्तन्त' कहते हैं ।

मुक्ति

समस्त दुःखों से कारण सहित छुटकारा एवं अखंड आनन्द की अनुभूति होने को मुक्ति कहते हैं । देह त्याग का नाम मुक्ति नहीं । मुक्ति किसी लोक में भी नहीं । अपने को जड़ देह से पृथक् आत्मा, साक्षी रूप से जानना ही मुक्ति है ।

जीवन् मुक्ति

देहादि दृश्य प्रपंच की प्रतीति सहित ज्ञान होने के क्षण से प्रारब्ध समाप्ति तक जो ज्ञानी की स्थिति होती है, उसे जीवन मुक्ति कहते हैं ।

विदेह मुक्ति

देहादि प्रपंच की प्रतीति से रहित जो एक अखण्ड समान्य ज्ञान सत्ता है वह विदेह मुक्ति कहलाती है ।

बुद्धि ज्ञान की सप्त भूमिका

शुभेच्छा	:	आत्मा के जानने की शुभ इच्छा
सुविचारणा	:	नित्यानित्य विवेक
तनुमानसी	:	मन से स्थूलता का नाश एवं सूक्ष्मता की जाग्रती
सत्वापत्ति	:	आत्म निष्ठा की प्राप्ति (आत्मसाक्षात्कार)
असंसक्ति	:	आसक्ति का सर्वथा अभाव
पदार्थाभावनी	:	नाम, रूप, जगत का पूर्ण अभाव निश्चय करसबको उनके अधिष्ठान कारण रूप देखना । जैसे घड़े को मिट्टी रूप देखना ।
तुर्यगा	:	बाह्य जगत का किंचित् भी होश न रहना तथा खान, पान, स्नानादिक देह की क्रियाओं का होश न होना । जैसे नमक की डली सागर में विलीन हो पुनः बाहर नहीं आती इस प्रकार वह ब्रह्म स्वरूप में स्थिती प्राप्त कर चुका है ।

(उपरोक्त सातों भूमिका का विस्तार वेदान्त प्रश्नोत्तरी प्रथम भाग में, योग वशिष्ठ महा रामायण तथा महो उपनिषद में देखे ।)

भेद भ्रान्ति के भेद

(१) जीव–ईश्वर, (२) जीव–जीव, (३) जड़–ईश्वर, (४) जड़–जीव, (५) जड़–जड़ का भेद ।

आनन्द की वृत्ति

(१) **प्रिय,** (२) **मोद,** (३) **प्रमोद**

प्रिय वृत्ति

इच्छित पदार्थ के दुर से दर्शन होने से मन में जो सुखानुभूति होती है, वह आनन्द की प्रिय वृत्ति कहलाती है । जैसे वृक्ष पर आम देखना, पौधे पर पुष्प देखना, दुकान पर इच्छित पदार्थ दिखाई पड़ना । दूरसे मन्दिर देखलेना ।

मोद वृत्ति

इच्छित पदार्थ को प्राप्त कर लेने से जो सुखानुभूति होती है वह आनन्द की मोद वृत्ति कहलाती है । जैसे आम को प्राप्त कर लिया, पुष्प को प्राप्त कर लिया । मन्दिर में प्रवेश हो जाना भगवान की मूर्ति देखलेना इससे आगे का सुख एकत्व सुख भक्त को नहीं मिलता क्योंकि वे द्वैत बनाये रखते है ।

प्रमोद वृत्ति

इच्छित पदार्थ को भोग लेने से जो सुखानुभूति होती है वह आनन्द की प्रमोद वृत्ति कहलाती है । जैसे आम को चूस लिया, पुष्प को सूंघ लिया । सामान को उपयोग में ले लिया । स्त्री-पुरुष को परस्पर भोग, जीव ब्रह्म एक अनुभव करलेना, नदी सागर में मिलजाना । यह ज्ञानीयों को प्राप्त होता है क्योंकि वे एकत्व प्राप्त करलेते हैं ।

मूलाज्ञान

शुद्ध ब्रह्म को आश्रय रह कर, उसी को ढक कर रखने वाली माया को मूलाज्ञान कहते हैं ।

तूलाज्ञान

घट, पटादि पदार्थ अवच्छिन्न चेतन को ढकने वाली अविद्या को तुलाज्ञान कहते हैं ।

पारमार्थिक सत्ता

वह सत्ता जिसका कभी किसी प्रकार अभाव न हो सके, उसे पारमार्थिक सत्ता या सत्य कहते हैं । जैसे आत्मा (मैं) ।

व्यावहारीक सत्ता

वह सत्ता जिसका ब्रह्मज्ञान के पूर्व किसी प्रकार अभाव रूप निश्चय न हो सके, उसे व्यावहारीक सत्ता कहते हैं । जैसे जगत् ।

प्रातिभासिक सत्ता

वह प्रतीति जिसका बिना ब्रह्मज्ञान के केवल दोष निवृत्ति से ही अभाव सिद्ध हो जाता है, उसे प्रातिभासिक सत्ता कहते हैं । जैसे नींद टूटने पर स्वप्न भ्रम, सूर्यास्त से सीप में चांदी भ्रम, एवं प्रकाश होने से रस्सी से सर्प भ्रान्ति दूर हो जाता है ।

अनिर्वचनीय सत्ता

वह प्रतीति जिसे आत्मा की तरह सत्य नहीं कहा जा सकता है, न ब्रध्या पुत्र की तरह असत् ही कहा जा सकता है, उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। जैसे माया।

लेशा विद्या

ज्ञान होने पर भी प्रारब्ध कर्म भोग पूरा न होने तक शरीर को बचाये रखने वाली लेशाविद्या कहलाती है ।

षट् सम्पत्ति

शम, दम, श्रद्धा, तितिक्षा, उपरामता, समाधानता, साधन मिलाकर षट् सम्पत्ति कहलाती है ।

शम

सत्संग, स्वाध्याय, आत्म चिन्तन करने के समय मन को अपने लक्ष्य में एकाग्र रखना। उस समय इन्द्रिय भोगों एवं बाह्य विषय जगत का विचार न करना शम कहलाता है ।

दम

सत्संग, स्वाध्याय, आत्म चिन्तन, कथा कीर्तन, भजन के समय इन्द्रियों के द्वारा अन्य क्रिया न करना । जैसे माला, जप, मेहंदी, स्वेटर, गेहूँ, चाँवल की सफाई, सिलाई, सब्जी काटना इत्यादि एवं मुख में सुपारी, पान, तम्बाखु, नास्का, सिगारेट, मसाला, गुटका पान बाहारादि का सेवन न करना ।

श्रद्धा

श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के शास्त्रानुसार उपदेश के प्रति अपने कल्याण का पूर्ण विश्वास रखना कि इनके द्वारा मेरा निश्चित ही कल्याण होगा । जैसा पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हेतु डाक्टर के उपचार, सलाह, संयम का श्रद्धा सहित पालन करते हैं ।

तितिक्षा

अपने लौकिक या पारलौकिक लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बिना रुकावट किये चलते जाना तितिक्षा कहलाती है । जैसे लोक निन्दा, भय, प्रलोभन,रोग, सर्दी, गर्मी, मानापमान, भूखादि की परवाह न कर लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहना ।

उपरामता

कर्म, उपासना को चित्तशुद्धि का ही साधन जाने । चित्तशुद्धि

उपरान्त उससे मोक्ष की आशा न रखें । मोक्ष हेतु ज्ञान सम्पादन करें। भोगों में ग्लानी रखें । धन, पुत्र, एवं भोग अशान्ति का हेतु जान उनसे मन उपराम रहे ।

समाधानता

विक्षेपरहित एकाग्र वृत्ति से संशयरहित होकर सद्गुरु के उपदेश को श्रवण करना समाधानता कहलाता है ।

मुमुक्षुता

मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा को ही मुमुक्षुता कहते हैं ।

वैराग्य

इस जगत के सुखों से लेकर ब्रह्मादिक लोकों के सुख की इच्छा न करने को वैराग्य कहा जाता है ।

कहिय तात सो परम बेरागी,
त्रण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी ।

ज्ञान

जीव ब्रह्म की एकता को जान लेना ही ज्ञान है ।

अज्ञान

जीव ब्रह्म को भिन्न मानना ही अज्ञान है । अर्थात् अपने को देह प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं जन्मने मरने वाला जानना और परमात्मा मुझसे भिन्न है ऐसा मानना ही अज्ञान है । ध्यान समाधि आदि साधन कर परमात्मा को प्राप्त करूँगा ऐसा विचार भी अज्ञान कहलाता है क्योंकि परमात्मा जीव का नित्य प्राप्त स्वरूप है ।

जाग्रत अवस्था

जिस काल में चौदह त्रिपुटियों का स्थूल कर्म एवं भोग होता है उस काल को जाग्रतावस्था कहते हैं ।

स्वप्नावस्था

जिस काल में जाग्रत के देखे, सुने, भोगे संस्कारों का मन के द्वारा बिना इन्द्रिय एवं भोग पदार्थ के सुख-दुःख का सूक्ष्म रूप से भोग हाता है उस काल को स्वप्न काल कहते हैं ।

सुषुप्ति

जिस काल में जाग्रत के स्थूल पदार्थ, स्वप्न के सूक्ष्म पदार्थ प्रतीत न हो केवल एक अज्ञान एवं आनन्द ही भासमान होता है उस काल को सुषुप्ति कहते हैं। जैसे मैं सुख से सोया कुछ पता नहीं चला ।

प्रत्यक्ष

जो विषय इन्द्रिय द्वारा ग्रहण हो रहा है, प्रत्यक्ष काहलाता है । अर्थात् जहाँ विषय से वृत्ति का सम्बन्ध हो उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं । ''अहं ब्रह्मास्मि'' वृत्ति का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होने से ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ।

परोक्ष

जो विषय इन्द्रियों के सम्मुख वर्तमान में नहीं है, उस दूरस्थ पदार्थ को परोक्ष कहते हैं । जैसे स्वर्ग, नरक, बड़ोदा, मुम्बई, दिल्ली या वहाँ रहने वालों के लिये अन्य स्थान परोक्ष है । अर्थात् जहाँ वृत्ति से विषयों का सम्बन्ध न हो विषय दूर है अथवा भूत या भविष्य में हो, उस अनुमान ज्ञान को परोक्ष ज्ञान कहते हैं ।

अपरोक्ष

जो विषय न प्रत्यक्ष कहा जासके न परोक्ष बतया जा सके;

बल्कि जिसका अन्तःकरण द्वारा भीतर ही अनुभव हो उसे अपरोक्ष ज्ञान कहते है । जैसे भुख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान, सुख-दुःख, कष्ट, दर्द इत्यादि ।

साक्षात् अपरोक्ष

जिस चैतन्य आत्म सत्ता के द्वारा इन प्रत्यक्ष परोक्ष एवं अपरोक्ष पदार्थ का ज्ञान हो उस इस आत्मा को साक्षात् अपरोक्ष कहते हैं ।

ज्ञानी

संशय विपर्यय से रहित आत्मानन्द में ही जो आनन्दित रहता है उसे ज्ञानी कहते हैं ।

अज्ञानी

जो विपर्यय ज्ञान एवं असम्भावनादि दोषों से ग्रसित् एवम् स्वर्गादिक फलों की कामना युक्त यज्ञादि कर्म काण्ड में रुचि रखने वाला होता है उसे अज्ञानी कहते हैं ।

मूढ़

जो अपने धन, बल, पद, ज्ञान, रूप, कुल, जाति के घमण्ड में अकड़ा रहना है एवं संतों से द्वेष करता है, संत ज्ञान में अश्रद्धा रखता है, संतों को देख प्रमाण नहीं करता है । उसे मूढ़ कहते हैं ।

पुरुषोत्तम

पुरुषों में उत्तम पुरुष को पुरुषोत्तम कहते हैं ।

उत्तम पुरुष

जो मैं या हम् रूप से कथन करने वाला है उसे उत्तम पुरुष कहते हैं ।

मध्यम पुरूष

जिसे तु, तुम, आप रूप में बताय जाता है उसे मध्यम पुरुष कहते हैं ।

अन्य पुरुष

जिसे वह, वे, वो रूप में कहा जाता है उसे अन्य पुरुष कहा जाता है ।

परिणाम

जो कारण अपने कार्य रूप में विकारी हो जाता है उसे परीणाम कहते हैं । जैसे दुध का दही । दही का दुध परीणामी उपादान कहलाता है । दही पुनः दुध, चावल पुनः धान, आटा पुनः गेहूं नहीं बन सकेगा । इस प्रकार जीव ब्रह्म का विकार या परिणाम नहीं है बल्कि विवर्त है ।

विवर्त

जो मिथ्या कार्य अपने उपादान कराण में बिना विकार लाये प्रतीत होता है उसे विवर्त कहते हैं जैसे अलंकार स्वर्ण का विवर्त है । स्वर्ण अलंकारों का विवर्त उपादान कारण है । इसी तरह निर्विकार जीव ब्रह्म का विवर्त है ।

विवर्तोपादान

जो मिथ्या कार्य अपने उपादान कराण में बिना विकार लाये प्रतीत होता है उसे विवर्तोपादान कारण कहते हैं जैसे स्वर्ण ।

अखण्ड

देश परिच्छेद, काल परिच्छेद तथा वस्तु परिच्छेद से रहित वस्तु को अखण्ड कहते हैं । अथवा अपरिच्छिन्न कहते हैं ।

देश परिच्छेद

जो वस्तु एक देश में हो और दूसरे देश में न हो वह देश परिच्छेद वाली कहलाती है । जैसे घट में पट नहीं पट में घट नहीं । आत्मा सर्व देश में होने से उसका देश परिच्छेद नहीं है ।

काल परिच्छेद

जिस वस्तु की एक काल में प्रतीति होती है, अन्य काल में प्रतीति नहीं होती वह वस्तु काल परिच्छेद वाली कहलाती है । जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा से रोशनी प्राप्त होती है, कृष्ण पक्ष में नहीं । ऋतुओं में वृक्ष पर फल लगते है अन्य काल में नहीं । आत्मा नित्य होने से काल परिच्छेद रहित है ।

वस्तु परिच्छेद

जो एक वस्तु, दूसरी वस्तु में न रहे, वह वस्तु परिच्छेद वाली कहलाती है । जैसे घट में पट नहीं है, पट में घट नहीं है; किन्तु आत्मा सर्वत्र समान रूप से विद्यमान है । आत्मा का वस्तु परिच्छेद नहीं ।

परिच्छिन्न

जो वस्तु किसी एक देश, एक काल एवं एक वस्तु रूप हो उसे परिच्छिन्न या मिथ्या कहते हैं ।

असंग

जिस सत्ता का किसी के साथ सजातीय सम्बन्ध न हो, किसी के साथ विजातीय सम्बन्ध न हो एवं जिसका स्वगत भेद न हो उसे असंग कहते हैं । जैसे मैं, आत्मा ।

सजातीय

अपने समान जाति वाले को सजातीय कहते हैं । जैसे ब्र्राह्मण-ब्राह्मण, मनुष्य-मनुष्य ।

विजातीय

अपने से अन्य जाति वाले को विजातीय कहते हैं जैसे मनुष्य

एवं पशु ।

स्वगत

अपने अर्न्तगत रहने वाले भेद को स्वगत भेद कहते हैं । जैसे हाथ, पैर, मुख, नाक, कान इत्यादि ।

मन

अन्तःकरण की संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को मन कहते हैं ।

बुद्धि

अन्तःकरण की निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि कहते हैं ।

चित्त

अन्तःकरण की चिन्तनात्मक वृत्ति को चित्त कहते हैं ।

अहंकार

अन्तःकरण की अभिमानात्मक वृत्ति को अहंकार कहते हैं ।

पंचभूत

आकाश, वायु, जल, तेज, पृथ्वी ।

पंच ज्ञानेन्द्रिय

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ।

पंच कर्मेन्द्रिय

वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा ।

पंच प्राण

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ।

प्राण वायु : हृदय में रहती है तथा २१ ६०० श्वाँसो च्छँवास क्रिया करता है ।

अपान वायु : गुदा में रहता है तथा मल मूत्र एवं दूषित वायु त्याग करती है ।

समान वायु : नाभी में रहती है । अन्न के पचाने में सहायक है।

उदान वायु : कंठ में रहती है । अन्न जल का विभाजन करती है ।

व्यान वायु : सम्पूर्ण शरीर में रहती है तथा जोड़ो, सन्धि स्थान को मुड़ने, घुमाने फिराने में सहायता करती है ।

पंच उपप्राण

नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय

नाग : डकार लेने की क्रिया करती है ।

कुर्म : आँख की पलको को बन्द व खोलने की क्रिया करता है ।

कृकल : छींक लेने का काम करती है ।

देवदत्त : जम्भाई लेने का काम करती है ।

धनन्जय : शरीर को फुलाने की क्रिया करती है । मरने पर भी मृत शरीर में रहकर उसे फुलाती है ।

अखण्डानन्द के पंच लक्षण

(१) सबसे बड़ा (२) अविनाशी (३) एकरस
(४) स्वतन्त्र (५) अभिन्न

उपरोक्त लक्षण याहां से ब्रह्मलोक पर्यन्त किसी लोक एवं

भोग में नहीं है । यह लक्षण तो सबके अपने आत्म स्वरूप में ही है । इसलिये नित्य प्राप्त आत्मा ही जानने योग्य है ।

पंच विषय

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ।

चार वेद

यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऋग्वेद, सामवेद ।

प्रज्ञान घन

जो सर्वदा एक अखण्ड ज्ञान स्वरूप रहता है, उसे प्रज्ञान घन या ब्रह्म कहते हैं । अर्थात् जिस चैतन्य के द्वारा पांचों ज्ञानेन्द्रिय के पाचों विषयों का अनुभव होता है वही वृत्ति उपहित चैतन्य प्रज्ञान घन कहलाता है ।

साधन चतुष्ट्य

विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरामता, समाधानता) तथा मुमुक्षुता इन चार साधन युक्त जिज्ञासु को साधन चतुष्ट्य कहते हैं ।

अन्तः करण चतुष्ट्य

मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार वृत्ति को अन्तःकरण चतुष्ट्य कहते हैं ।

ज्ञान के आठ अंग

विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत-त्त्वम् पदार्थ का शोधन, यह बुद्धि ज्ञान के आठ अंग है । यह ज्ञान के अन्तरंग साधन है । जिससे बुद्धि गत असम्भावना एवं विपरीत भावना की निवृत्ति होती है ।

ज्ञान के बहिरंग साधन

चित्त शुद्धि हेतु साधक को मन्त्र, माला, पूजा, पाठ, तीर्थ, मन्दिर, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान, तपादि ज्ञान के बहिरंग साधन करना चाहिये ।

मुमुक्षु का कर्तव्य

मोक्षाभिलाषी साधक को बहिरंग साधन का फल सहित त्याग कर ज्ञान के अन्तरंग आठ साधनों का क्रमशः अभ्यास करना चाहिये । क्योंकि सभी प्रकार के दुःख की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के हेतु स्वरूप ज्ञान है । इससे अतिरिक्त सब साधन बन्धन के हेतु है ।

भूमा

जो शोक रहित एवं अखण्डानन्द स्वरूप सत्ता है उसे भूमा या ब्रह्म कहते हैं । उससे भिन्न सभी क्षणिक सुख दायक एवं परिणाम में महान दुःख (जन्म-मृत्यु) के साधन है । **'यो वै भूमा तत्सुखम्', 'नाल्पे सुखमस्ति' ।**

मुक्त

स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण देहाभिमान से भिन्न द्रष्टा, साक्षी, सोऽहम्, अहंब्रह्मास्मि रूप जो अपना स्वरूप है, उसका जिसे संशय रहित दृढ़ज्ञान है वह मुक्त कहलाता है ।

जिज्ञासु

मल-विक्षेप दोष से रहित सद्गुरु सत्शास्त्र में श्रद्धालु व्यक्ति, जिसकी संसार के अनित्य पदार्थ में रुचि नहीं होती बल्कि जिसे परमानन्द की प्राप्ति एवं समस्त दुःखों की कारण सहित निवृत्ति रूप मोक्ष प्राप्त करने की ही एक मात्र इच्छा है वही जिज्ञासु है । अस्तु जिज्ञासु ही मोक्ष के

साधन ज्ञान का अधिकारी है । संसारी विषय वासना से ग्रसित पामर पुरुषों की वेदान्त ज्ञान में रुचि नहीं होती ।

गुरु

समस्त शरीरों में रहनेवाले चैतन्य रूप ब्रह्म की जो साऽहम् रूप में प्राप्ती कराए वही गुरु उपास्य है तथा गुरु कहलाने योग्य है ।

शिष्य

शिष्य अर्थात् ज्ञान प्राप्ति द्वारा संसार रूप अज्ञान का नाश होकर दृढ़ आत्मभाव में जो स्थित रहता है वह शिष्य है ।

ख्याति (प्रतीति)

असत् ख्याति, आत्म ख्याति, अन्यथा ख्याति तथा अनिर्वचनीय ख्याति ।

उपरोक्त पांच ख्याति में चार अयुक्त है । खण्डन की रीति कठिन होने से जिज्ञासु के लिये उनका जानना कर्तव्य रूप नहीं है । जिन्हें जानने की अभिलाषा हो वह स्वराज्यसिद्धि आदि ग्रन्थों में विस्तार से देख लें ।

अनिर्वचनीय ख्याति

सत-असत से विलक्षण ख्याति को अनिर्वचनीय ख्याति कहते हैं।

यदि अविद्या का कार्य रस्सी अधिष्ठान में सर्प सत्य होता तो वह सर्प, रस्सी से कदापि निवृत्त नहीं होता किन्तु अधिष्ठान रस्सी ज्ञान से बाध हो जाता है, इस कारण अध्यस्त सर्प सत नहीं ।

यदि रस्सी में प्रतीत होने वाला सर्प ब्रध्या पुत्रवत असत होता तो उसकी प्रतीति एवं उससे भय उत्पन्न नहीं होना चाहिये था, किन्तु

प्रतीति होती है इसलिए उसे असत् भी नहीं कह सकते ।

रस्सी अधिष्ठान में सर्प प्रतीति अविद्या का परिणाम स्वरूप तथा चेतन का विवर्त समझना चाहिये ।

अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र द्वारा निकल कर दृश्य विषय तक लम्बी होकर पहुँचती है । जैसे टार्च से प्रकाश निकल पदार्थ तक लम्बा होकर पहुँचता है । उसी प्रकार अन्तःकरण की वृत्ति विषय तक पहुँच विषय के समान आकार को धारण करती है । किन्तु मन्द अन्धकार या नेत्र दोष के कारण विषय पदार्थ का स्पष्ट दर्शन एवं ज्ञान नहीं हो पाता । इससे अन्तःकरण की वृत्ति ठीक रस्सी के आकार को धारण नहीं कर पाती है और रस्सी का आवरण भंग नहीं हो पाता।

इस प्रकार आवरण भंग के निमित्त वृत्ति का सम्बन्ध विषय से होकर भी जब रस्सी का आवरण भंग नहीं होता, तब रस्सी चेतन स्थित अविद्या में क्षोभ होने से वह अविद्या सर्पाकार परिणाम को प्राप्त होती है ।

असत् ख्याति

शून्यवादी का अभिप्राय है कि रस्सी के स्थान में सर्प अत्यन्त असत है । वैसे अन्य स्थान पर भी सर्प असत है । ऐसे असत सर्प की रस्सी के स्थान पर प्रतीति होना असत् ख्याति कहलाती है ।

आत्म ख्याति

विज्ञान वादी का कथन है कि रस्सी के स्थान में या अन्य स्थान में बुद्धि के बहार कहीं सर्प नहीं है । बुद्धि के बाहर कोई पदार्थ भी नहीं होता । सभी आकारों को बुद्धि ही धारण करती है । और यह बुद्धि क्षणिक विज्ञान रूप है । क्षण में नष्ट होकर नूतन रूप धारण

करती है । ऐसी क्षणिक बुद्धि से उत्पन्न सर्प भी क्षण-क्षण में उत्पन्न एवं नाश को प्राप्त होता है । इसे आत्म ख्याति कहते हैं ।

अन्यथा ख्याति

नैयायिक और वैशेषिक मत वालों का अभिप्राय है कि बांबी आदि में जो सर्प सत्य है, उसे नेत्र से देखते हैं, उसी के प्रभाव से सर्प सम्मुख प्रतीत होता है । इस प्रकार के कथन को अन्यथा ख्याति कहते हैं ।

अख्याति

प्रभाकर अख्याति वादी का अभिप्राय यह है कि 'यह सर्प है' इस ज्ञान में 'यह' सामान्य अंश तो रस्सी का है जो प्रत्यक्ष है और 'सर्प' यह भ्रम ज्ञान अंश पूर्व देखे हुए सर्प का स्मृति ज्ञान है । इस प्रकार दो ज्ञान है ऐसे प्रतीति और कथन को अख्याति कहते हैं ।

प्रमाण के भेद

प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि ।

प्रत्यक्ष प्रमाण

अन्तःकरण की वृत्ति और घट दोनों एक देश में स्थित हो जाने से घट का प्रत्यक्ष होता है । अर्थात् इन्द्रिय प्रमाण से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । इसके मानने वाले चार्वाक है ।

अनुमान प्रमाण

कणाद और सुगतम के अनुयायी एक प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ अनुमान प्रमाण ही मानते है । जैसे भोजन किये व्यक्ति को तृप्ति का अनुमान ज्ञान भोजन में प्रवृत्ति का हेतु है । यदि भोजन द्वारा तृप्ति का अनुमान ज्ञान न हो तो वर्तमान में तृप्ति के लिये भोजन की रुचि नहीं

होगी ।

शब्द प्रमाण

कपिल अचार्य प्रत्यक्ष, अनुमान के साथ तीसरा शब्द प्रमाण भी मानते हैं । जैसा किसी का पिता देशान्तर में मर गया हो, तो उससे आकर कोई यथार्थ वक्ता कहे कि तेरा पिता मर गया तब सुनने वाले को अपने पिता के मरने का ज्ञान हो जाता है यदि वह केवल प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण को मानता तो उसे किसी के द्वारा पिता मरने की बात सुनकर दुःख नहीं हो सकेगा क्योंकि पिता की मृत्यु को जो देशान्तर में हुई है उसे न प्रत्यक्ष प्रमाण से जान सका न अनुमान प्रमाण से जान सकेगा । इसलिये शब्द प्रमाण भी मानना पड़ता है ।

उपमान प्रमाण

गोतम चौथा उपमान प्रमाण भी मानते हैं । यदि प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द प्रमाण ही माने तो जिसने 'गवय' पशु नहीं देखा, किन्तु किसी वनवासी से ऐसा सुना कि 'गवय गाय के समान होता है' । फिर कभी जंगल में उसे गवय दिखाई पड़ जावे तो वनवासी को शब्द को स्मरण हो जाता है कि गवय गाय के समान होता है । उसे स्मृति से यह ज्ञान हो जाता है कि यह 'गवय' है । गवय गाय के समान होता है यह उपमान प्रमाण भी माना गया है ।

अर्थापत्ति प्रमाण

भष्ट शिष्य प्रभाकर पाँचवा अर्थापत्ति प्रमाण को भी स्वीकार करते हैं । क्योंकि दिन में भोजन न करने वाले पुरुष को स्वस्थ एवं स्थूलता को देख कर यह ज्ञात होता है कि यह पुरुष रात्रि को अवश्य भोजन करता होगा । इस प्रकार रात्रि भोजन करता है, यह ज्ञान का हेतु उसकी स्थूलता का ज्ञान, अर्थापत्ति प्रमाण कहा जाता है । अथवा प्रत्यक्ष मैथुन क्रिया न देखकर भी गर्भ धारण करने से मैथुन करने का ज्ञान हो जाता है ।

अनुपलब्धि प्रमाण

भट्ट छठे अनुपलब्धि प्रमाण को भी स्वीकार करते हैं । जैसे पूर्व घर में घड़ी, टी.वी. देखा है बाद में वह चोरी हो जावे तब घर का मालिक घड़ी, टी.वी. नहीं है यह अनुपलब्धता से जानता है । यदि अनुपलब्धि प्रमाण न माना जावे तो घर से चोरी हुए सामान को प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति या शब्द प्रमाण से नहीं जान सकेगा । अतः ऐसे पदार्थो के अभाव निश्चय के हेतु पदार्थ की अप्रतीति को अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं । वेदान्त शास्त्र में भी षट् प्रमाण माने जाते हैं ।

साक्षी भास्य

सुख-दुःख को ग्रहण करने में बाह्य इन्द्रियाँ हेतु नहीं है । किन्तु जब सुखादि की उत्पत्ति होती है उसी समय अन्य साधन की अपेक्षा बिना सुखाकार, दुःखाकार अन्तःकरण की वृत्ति होती है, उस वृत्ति में आरुढ़ साक्षी सुख-दुःख का प्रकाश करता है इसलिये सुख-दुःख, सुषुप्ति, ध्यानादि साक्षी-भास्य कहलाते हैं ।

आभास भास्य

अन्तःकरण की वृत्ति में आरुढ़ चैतन्य एवं चिदाभास को प्रमाता कहते हैं । जो इन्द्रिय प्रमाण द्वारा विषय प्रमेय को प्रकाशित करता है । उस विषय जगत को आभास भास्य कहते हैं ।

साक्ष्य

साक्षी के द्वारा जो विषय प्रपंच प्रकाशित किये जाते है उसे साक्ष्य कहते हैं । जैसे सुख-दुःख ।

सम समुच्चय

अन्तःकरण शुद्धि का साधन कर्म, उपासना एवं मोक्ष का साधन ज्ञान का एक साथ सेवन करना सम समुच्चय वाद कहलाता है । (यह

वेदान्त सिद्धान्त विरुद्ध मत है । जीवोऽहम्, ब्रह्मास्मि अहम्, दो वृत्ति का परस्पर विरोध है । कर्म और ज्ञान का फल परस्पर विरोधी है जैसे दासोऽहम् एवं सोऽहम् ।)

क्रम समुच्चय

प्रथम अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म-उपासना कर आत्म जिज्ञासा होने पर कर्म, उपासना को फल सहित त्याग कर मोक्ष का साधन वेदान्त तत्त्व का श्रवण, मनन करना क्रम समुच्चय है । क्योंकि एक ही अन्तःकरण में दो विरोधी वृत्ति नहीं रह सकती । कर्म, उपासना, ईश्वर के प्रति भेद बुद्धि रखने से होगी कि मैं कर्म करने वाला हुँ एवं ईश्वर फल देने वाला मुझसे भिन्न है । उपासना में भी 'मैं उपासक हूँ और देवता उपास्य है' इस भेद बुद्धि से होती है । जबकि ज्ञान मैं ब्रह्म हूँ इस अभेद बुद्धि से होता है ।

दृष्ट फल

प्रत्यक्ष फल की प्रतीति दृष्ट फल है । जैसे भोजन का परिणाम तृप्ति प्रत्यक्ष देखा जाता है । अग्नि के स्पर्श से दाहकता दृष्ट फल का हेतु है । इसी प्रकार अधिष्ठान ज्ञान से भ्रान्ति की निवृत्ति प्रत्यक्ष होती है ।

अदृष्ट फल

सकाम कर्म, उपासना का फल स्वर्ग प्रत्यक्ष फल का हेतु नहीं, बल्कि शास्त्र प्रमाण से जाना जाता है ।

व्यावर्तक

जो वस्तु लक्ष्य पदार्थ से भिन्न रहती है एवं लक्ष्य वस्तु को सबसे पृथक् प्रदर्शित करती है, उसे व्यावर्तक या उपाधि कहते हैं । जैसे वन्दर वाला मकान ।

सामान्य ब्रह्म

जो ब्रह्म सत्ता सर्वत्र, सर्व काल, सर्व रूप में विद्यमान है वह सामान्य ब्रह्म कहलाता है । अस्ति, भाति, प्रिय रूप में ब्रह्म अणु-अणु रूप में विद्यमान है । यह सत्य ब्रह्म कहलाता है । जैसे बिजली सर्वत्र तारों में विद्यमान रहती है । व्यापक चैतन्य अज्ञान का विरोधि नहीं है ।

विशेष ब्रह्म

कम देश, काल, रूप में होता है उसे विशेष ब्रह्म कहते हैं जो मिथ्या कहलाता है । जैसे जहाँ अन्तःकरण होता है वही विशेष ब्रह्म प्रतीत होता है । जैसे बल्ब, पंखा, टी.वी. हीटर, कूलर, आदि में बिजली प्रकट दिखाई पड़ती है । इस तरह वृत्ति में स्थित चैतन्य विशेष चैतन्य कहलाता है । वृत्ति में स्थित चैतन्य अज्ञान का विरोधि है । माचिस में स्थित अग्नि, जलाने का काम नहीं करती है किन्तु घर्षण से उत्पन्न अग्नि जलाने का काम करती है।

आत्मा निर्विशेष है । समान्य-विशेष भाव अविद्या से प्रतीत होता है।

आत्मा की प्रतीति

'आत्मा है' यह प्रतीति सब को होती है । आत्मा का अर्थ है अपना स्वरूप । मैं नहीं हूँ ऐसी प्रतीति किसी को नहीं होती । 'मैं हूँ' ऐसी प्रतीति सभी को होती है । मैं जान रहा हूँ यह आत्मा होने का प्रमाण है। दिखाई पड़ना आखे होने के प्रमाण की तरह ।

इस प्रकार सत् रूप आत्मा का भान सभी को होता है। और आत्मा चैतन्य आनन्द, व्यापक, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप है। ऐसी प्रतीति सभी को नहीं होती है ।

नित्यकर्म

जो कर्म नित्य करने योग्य है । जैसे स्नान, ध्यान, जप, होम, अतिथि, पितामाता, सद्‌गुरु सेवा, स्वाध्याय आदि नित्य कर्म कहलाते हैं । जिनको करने से अन्तःकरण शुद्धि एवं स्वर्ग प्राप्ति फल होता है, न करने से दोष लगता है।

नैमित्तिक कर्म

किसी एक इच्छा को पूर्ण करने के निमित्त जो कर्म किया जाता है उसे नैमित्तिक कर्म कहते हैं । जैसे पुत्र प्राप्ति हेतु पुत्रेष्ठी यज्ञ, स्वर्ग हेतु ज्योतिष्टोम यज्ञ,करना । किन्तु इन नित्य नैमित्तिक कर्म द्वारा अनित्य फल स्वर्गादि की प्राप्ति होती है, मोक्ष की नहीं ।

निषिद्ध कर्म

श्रुति, स्मृति, वेद जिन कर्मों को करने के लिये निषेध करते है उन कर्मों को निषिद्ध कर्म कहते हैं । जैसे चोरी, मांस भक्षण, हत्या, परस्त्री गमन, पर पुरुष सेवन, दहेज, मिलावट, घुंसलेना, शराब, सिगारेट, तम्बाखु सेवन, इत्यादि करने से वह नरक व दुःख को प्राप्त होता है । दुर्गति का हेतु है ।

काम्य कर्म

जो जो यज्ञादि शुभकर्म द्वारा स्वर्ग सुख प्राप्त होता है उसे काम्य कर्म कहते हैं ।

प्रायश्चित कर्म

चान्द्रायणादि कष्टप्रद व्रत, अनुष्ठान, जो पाप नाश के लिये किया जाता है, उसको प्रायश्चित कर्म कहते हैं ।

जीव के तीन भेद

पारमार्थीक जीव – साक्षी चैतन्यात्मा
व्यवहारिक जीव – कर्ता–भोक्ता साभास अन्तःकरण रूपक जीव
प्रातिभासिक जीव – स्वप्नावस्था में भोगने वाला जीव, अध्यस्त स्वप्नकाल का जीव ।

अध्यारोप

प्राकृत (वास्तव) वस्तु में भ्रान्ति के कारण अप्राकृत (मिथ्या) वस्तु का जो कल्पना आरोपित किया जाता है उसे अध्यारोप कहा जाता है । जैसे रस्सी में मन्द अन्धकार के कारण सर्प भ्रान्ति हो जाता है । इसे ही अध्यारोप कहाजाता है ।

मूर्ति प्रतिपादन उपलक्ष

विष्णु, शिव, गणेश, राम, कृष्णादि मूर्तियाँ का भेद उपासना के उद्येश्य से नहीं वरन सभी मुर्ति नाम–रूप कारण ब्रह्म का उपलक्ष कहलाती है । उपलक्ष का प्रयोजन है कि विशेष वस्तु के स्वरूप ज्ञान हो । आकारों से मन्दबुद्धि वालों को निराकार कारण ब्रह्म का ज्ञान हो सके इसी अभिप्राय से मूर्ति पूजा प्रतिपादन का अभिप्राय है, अन्य अभिप्राय नहीं है । जैसे मयुर वाला मकान, सुरेश का घर है । मयुर का अन्य प्रयोजन नहीं है । उपलक्ष मोक्ष का कभी होता है ? कभी नहीं । एक देशीय, कभी–कभी होने वाली एक कालिक वस्तु उपलक्ष कहलाती है ।

समाधि

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुच्छ्रा, ध्यान, समाधि इन समस्त प्रपंच को जो इस देह भीतर रहकर जानता है, वह सर्व प्रकाशक, स्वयं प्रकाश, सर्वाधिष्ठान एक आत्मा है वही जीव का वास्तिविक स्वरूप है । जो समस्त मन, बुद्धि का प्रकाशक है, वह ब्रह्म है, वह तु है ऐसा जानना हि विचार समाधि है । अज्ञान का प्रकाशक मैं ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ। मेरे द्वारा ही समस्त त्रिपुटी सहित दृश्यवर्ग जाना जाता है । यह मन की

चंचलता, स्थिरता तथा बुद्धि की ध्यान, समाधि का मेरे द्वारा ही बोध होता है ।

हे आत्मन् ! मैं चैतन्य इस दृश्य जगत् के आदि मध्य तथा अन्त में एकरस हुँ । इसी बोध में मैं ध्यान, समाधि आदि साधनों की फांसी से मुक्त हूँ । चित्त को शांत होने को समाधि कहते हैं । किन्तु चित्त के चंचलता व शान्त अवस्था से पूर्व ही मैं नित्य विद्यमान, नित्य समाधिस्थ ही हूँ । मन रूप वायु की स्थिरता हो या आन्धि तूफान हो किन्तु आकाश रूप मुझ सच्चिदानन्द साक्षी आत्मा की न कोई हानि है न कोई लाभ है । मुझ चैतन्य निर्विकल्प रूप आत्मा को सहज समाधि बनी ही रहती है । एक पदार्थ का ज्ञान हो या अनेक पदार्थों का ज्ञान हो वहाँ चित्त एकाग्रता पूर्वक ही होता है । ज्ञान का विषय बदल बदल कर होता है । किसी पदार्थ का ज्ञान एक क्षण रहे या दो, चार आठ, दस मिनट् रहे पर बिना चित्त की स्थिरता के किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता । यह चित्त की एकाग्रता ही सहज समाधि है ।

पुराणों मे विरुद्धता

सभी पुराणों में कारण-कार्य के नाम रूप संकेत का भेद नहीं है । पुराणों में कारण ब्रह्म की उपासना उपादेय और कार्य ब्रह्म की उपासना हेय मानी गई है । इस प्रकार सभी पुराण एक ही कारण ब्रह्म के उपासक है । उनका परस्पर विरोध नहीं है । इस प्रकार विष्णु पुराण में विष्णु की स्तुति और शिव की निन्दा से व्यास जी का यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिये । कारण सत्य होने से वही पूजने योग्य है।

ज्ञानियों के व्यवहार में भेद

प्रारब्ध दो प्रकार का होता है (१) निवृत्ति प्रधान, (२) प्रवृत्ति प्रधान । जिस ज्ञानी का प्रारब्ध भिक्षा, भोजन मात्र रूप फल का हेतु है उसकी भिक्षा, भोजन मात्र में ही रुचि होगी, किन्तु जिसका प्रारब्ध अधिक भोग व्यवहार का हेतु है उसका व्यवहार प्रवृत्ति अधिक भोगों के लिये होती है। ज्ञानियों का ज्ञान समान एवं उसका फल मोक्ष भी समान होता है । उसमें भेद नहीं है ।

राजा जनक का राज्य विस्तार, याज्ञवल्क्य का जनक की ज्ञानियों की सभा में विजय प्राप्त कर धन संग्रह, अर्जुन का युद्ध अधिक प्रवृत्ति दिखाई पड़ता है । तो दूसरी तरफ शुकदेव, वामदेव का प्रारब्ध अल्प भोग का हेतु है ।

दिव्य चक्षु

दिव्यचक्षु	=	ज्ञान चक्षु
ज्ञान चक्षु	=	विचार नेत्र
विचार नेत्र	=	लय चिन्तन
लय चिन्तन	=	कार्य को कारण रूप देखना

दिव्य चक्षु द्वारा मिश्री में परमात्मा दर्शन

मिश्री का कारण चीनी, चीनी कारण गुड़, गुड़ का कारण रस, रस का कारण गन्ना (ईख, सान्टा), ईघ कारण मिट्टी, मिट्टी का कारण जल, जल का कारण तेज, तेज का कारण वायु, वायु का कारण आकाश, अकाश का कारण तन्मात्रा (सूक्ष्मभूत) तन्मात्रा का कारण अहंतत्त्व (समष्टि जीव का अहंकार), अहंतत्त्व का कारण महतत्त्व, (समष्टि जीवों की बुद्धि), महतत्त्व का कारण प्रकृति, प्रकृति का कारण माया, माया का हेतु शक्ति, शक्तिा हेतु शक्तिमान परमात्मा । इसी तरह मिश्री में परमात्मा दर्शन दिव्यचक्षु द्वारा होता है । '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' ।

मैं प्रबोधक आत्मा के अनेक प्रयोग

आत्मज : अपना लड़का

आत्मजा : अपना लड़की

आत्मवत् : अपनी रतह

आत्म रक्षा : अपनी रक्षा

आत्म कथा : अपना जीवन वृत्तान्त

आत्मन्नोती : अपनी उन्नती

आत्म हत्या : अपनी हत्या । अपनी आप को आत्मा न जानना

आत्म समर्पण : अत्म निवेदन, अपना बलिदान

आत्मोद्धार : अपना कल्याण, आत्मा का उद्धार

आत्म स्मृति : अपने होने का होंस, अपने सच्चे स्वरूप का स्मृति

आत्म विस्मृति : अपने आप को भूल जाना, अपना ध्यान न रखना

आत्म रक्षक : अपनी रक्षा करना

आत्म हीत : अपना भला

आत्मरति : अपने आपका आनन्द, आत्मानन्द, अपने आप रमण करना ।

आत्मवलम्बी : अपने सहारे सब काम करने वाला

आत्मीयता : अपना पन

आत्मबन्धु : अपने रिस्तेदार

आत्मगत : अपने आप, स्वगत

आत्मबश : जितेन्द्रिय

आत्मज्ञान के लिये उपयोगी

चित्रावली


संसार चक्र
मनुष्य जीवन सर्वश्रेष्ठ क्यों ?

कस्तूरी कुण्डल बसे मृग खोजे वन माहिं ।
ऐसे प्रभु घट घट बसे मूरख बाहर जाहिं ।।



देख देख देखने वाले को देख !
जान जान जानने वाले को जान !
सुन सुन सुनने वाले को सुन !

विचारो की वह कौन है ?

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमत्ययम् ।।

७/२५ गीता



भक्त लोग मेरे दर्शन करने के लिये नाना तीर्थ, मन्दिर, मूर्तियों की ओर दौड़ते रहते हैं । वे लोग मूर्तिकार के मन कल्पित मूर्ति के सम्मुख नतमस्तक हो पत्र, पुष्प, फल, जल, मिष्टान्न आदि नैवेद्य रखते हैं । किन्तु विवेकशून्य अज्ञानी लोग मेरे अजन्मा, अविनाशी, अरूपी आत्म स्वरूप को व्यक्ति रूप मानकर राम नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, शिवरात्री आदि तिथियों पर जन्मोत्सव पालन करते हैं ।

हे आत्मन् ! अज्ञानी लोग नाम, रूपक माया उपाधि के पीछे स्थित मुझ सच्चिदानन्द परमात्मा को अपने इन चर्म चक्षुओं द्वारा कभी नहीं देख सकेंगे ।

मेरे वास्तविक स्वरूप को तो कोई भाग्यशाली भक्त ही सद्गुरु की कृपा से तत्त्वमसि महावाक्य के उपदेश द्वारा प्राप्त ज्ञान चक्षु से अपने देह मन्दिर के भीतर ही मन बुद्धि के साक्षी रूप में अर्थात् सोऽहं रूप में जान पाता है । जैसे उपरोक्त बुर्खावाली महिला सभी को स्पष्टरूप से देखती रहती है उस बुर्खे के अन्दर छिपे उस महिला के वास्तविक रूप को कोई भी मनुष्य नहीं देख पाता है ।

परमात्मा व्यक्ति नहीं शक्ति है ।

शक्ति स्वरूप परमात्मा के
प्रतिक रूप प्रतिमा



परमात्मा कि व्यक्तिरूप प्रतिमा



अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स श्रुणोत्य कर्णः
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ।

श्वेताश्वतर उप. ३/१९

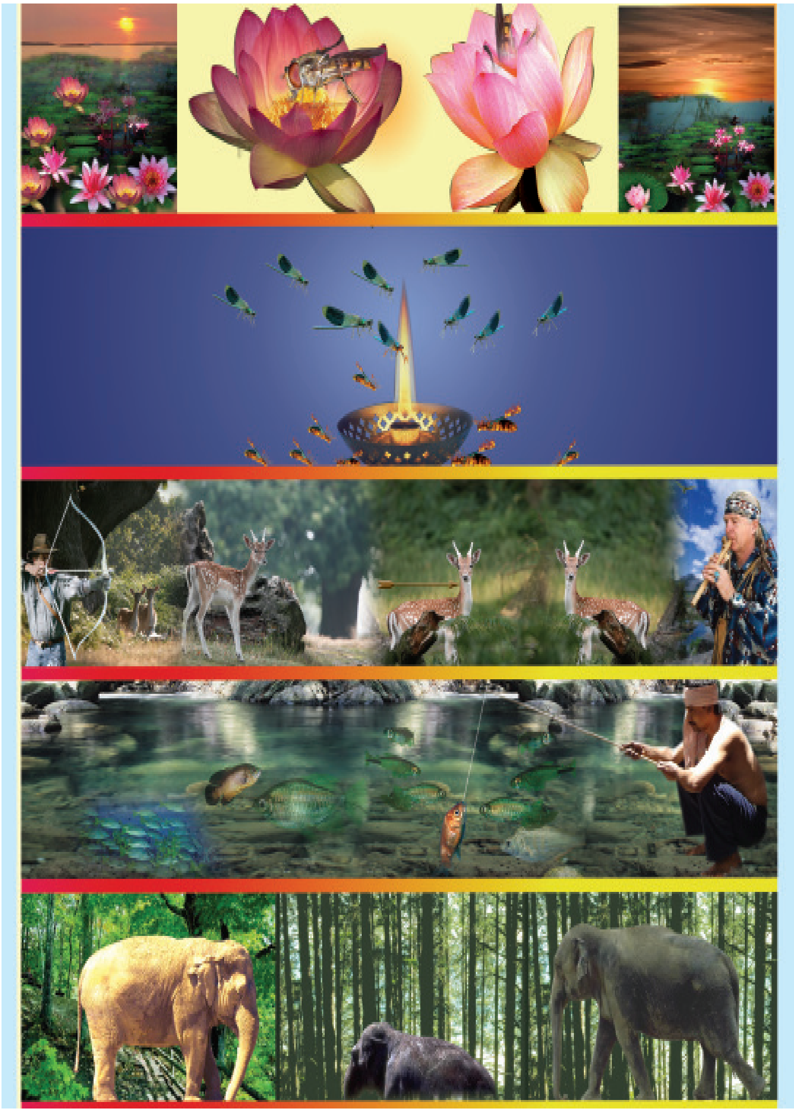
विवेक कीजिये: कौन शव है–कौन शिव है ?



शवयात्रा : कौन किसे उठाकर ले जा रहा है – शव



पंच विषयासक्ति



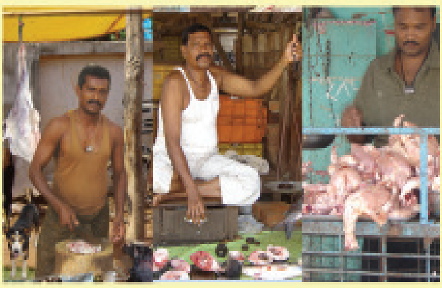
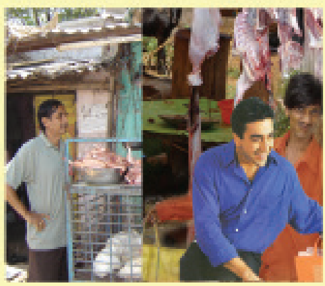
अलि, पतंग, मृग, मीन, गज इनको एकहुँ आंच ।
तुलसी वाकी का गति जाके पीछे पांच ।।

मांसाहार में दोषी कौन ?





१. इच्छाकसोटक्वलाबिक्री करशिकाराकरने वाला/ मारने वाला ३. उठाकर लाने

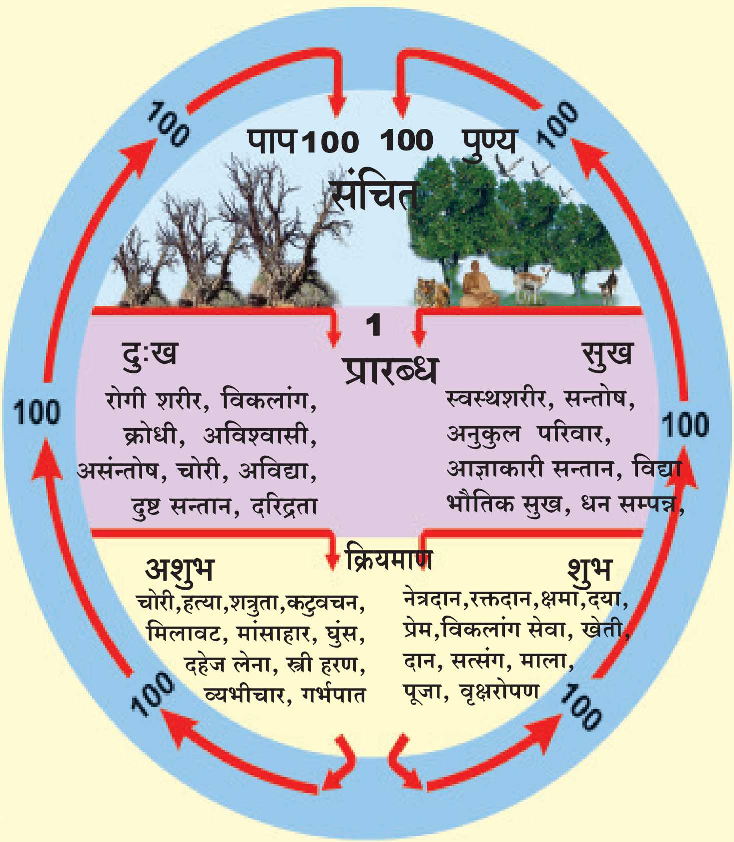
५. खरीद कर घर लानेवाला





६. पकाकर खिलाने वाला ७. खाने वाला ८. न खाकर केवल देखने वाला (अनुमोदन कर्ता)

अनादि जीव का सृष्टि चक्र



यथैधांसि समिद्धोऽग्नि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।

गीता : ४/३७

ॐकार, आत्मा और ब्रह्म के चतुष्पाद

ॐकार	अ	उ	म	अमात्र
आत्मा	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	जीव साक्षी आत्मा
ब्रह्म	वैश्वानर	सूत्रात्मा	अन्तर्यामी	ईश्वर साक्षी ब्रह्म

अन्न, जल, तेज का परिणाम

परिणाम	अन्न	जल	तेज
सूक्ष्म	मन	प्राण	वाक्
मध्यम	मांस	रक्त	मज्जा
स्थूल	मल	मूत्र	हड्डी

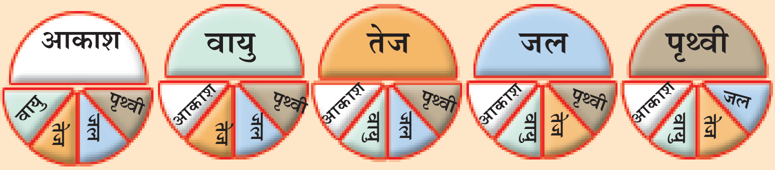
तीन स्नान, साधन एवं फल

स्नान	साधन	फल	अनुभूति
शारीरिक	जल, साबुन	निर्मल	स्फूर्ति
मानसिक	प्राणायाम, ध्यान सत्संग, भजन	चित्त प्रसन्न एकाग्रता	आत्म जिज्ञासा
आत्मिक	ज्ञान	मुक्ति	सोऽहम् ब्रह्म

पंच भूतों का पंचीकरण पद्धति

पूर्ण तन्मात्रा	आकाश तन्मात्रा, वायु तन्मात्रा, तेज तन्मात्रा, जल तन्मात्रा, पृथ्वी तन्मात्रा	पंचीकरण से पूर्व पंच अपंचीकृत भूत अपने पूर्ण सूक्ष्म तन्मात्रा रूप में ।
१/२ भाग	आकाश आकाश, वायु वायु, तेज तेज, जल जल, पृथ्वी पृथ्वी	सूक्ष्म भूत को सृष्टि सृजन के योग्य बनाने हेतु प्रथम पंच भूतों के समान दो भाग ।
अर्धका १/४ भाग	आकाश: आकाश आकाश आकाश आकाश; वायु: वायु वायु वायु वायु; तेज: तेज तेज तेज तेज; जल: जल जल जल जल; पृथ्वी: पृथ्वी पृथ्वी पृथ्वी पृथ्वी	सम्पूर्ण भूत से प्रत्येक भूतों के आधे भाग को रख, आधे भाग के चार समान भाग हुए ।
पंचीकृत मिलित अंश	आकाश: वायु तेज जल पृथ्वी; वायु: आकाश तेज जल पृथ्वी; तेज: आकाश वायु जल पृथ्वी; जल: आकाश वायु तेज पृथ्वी; पृथ्वी: आकाश वायु तेज जल	प्रत्येक भूत से अपने लिये १/२ रख अन्य भूतों को आधे भाग के १/४ दे दिया ।

स्थूल शरीर – २५ तत्त्व



पंचीकृत पंचभूत	आकाश	वायू	तेज	जल	पृथ्वी
आकाश	शोक	प्रसारण	निद्रा	लाल	केश
वायु	काम	धावन	तृषा	स्वेद	त्वचा
तेज	क्रोध	वलन	क्षुधा	मूत्र	नाड़ी
जल	मोह	चलन	कान्ति	रजवीर्य	मांस
पृथ्वी	भय	अकुंचन	आलस्य	रक्त	हाड़

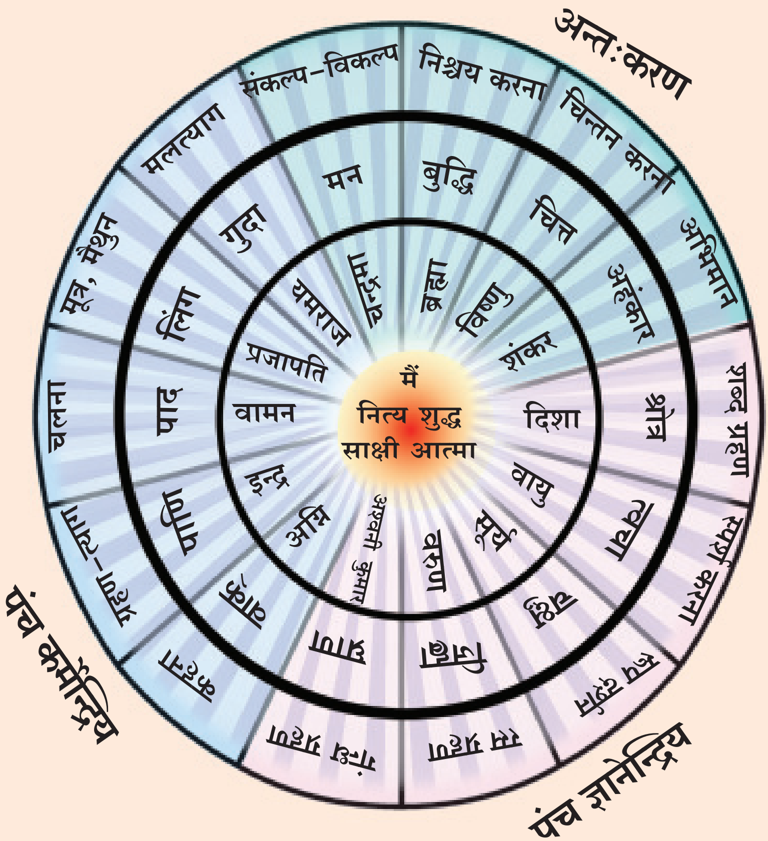
मैं उपरोक्त पंच भूतों के २५ तत्त्वों का द्रष्टा–साक्षी आत्मा इस शरीर के नाम, रूप, जाति, आश्रम, सम्बन्ध, परिणाम एवं जन्म–मृत्यु धर्मों से असंग, नित्य, निराकार, अनामय, निर्विकार ब्रह्म हूँ ।

सूक्ष्म शरीर

अपंचीकृत सूक्ष्म पंचभूत	सत्वगुण		रजोगुण		तमोगुण
	मिलित वृत्तियाँ	स्वतन्त्र ज्ञानेन्द्रियाँ	मिलित वायु	स्वतन्त्र कर्मेन्द्रियाँ	विषय
आकाश	अन्तः करण	श्रोत्र	व्यान	वाक्	शब्द
वायु	मन	त्वचा	समान	पाणि	स्पर्श
तेज	बुद्धि	चक्षु	उदान	पाद	रूप
जल	चित्त	जिह्वा	प्राण	लिंग	रस
पृथ्वी	अहंकार	घ्राण	अपान	गुदा	गंध

मैं उपरोक्त सूक्ष्म शरीर के समस्त गुण कर्म विभाग का द्रष्टा, साक्षी, आत्मा उसके **कर्ता-भोक्ता, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, सुख-दुःख, चंचल-शान्त, ज्ञान-अज्ञान एवं बन्ध-मोक्ष** धर्मों से रहित नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तानन्द ब्रह्म हूँ ।

चौदह त्रिपुटी



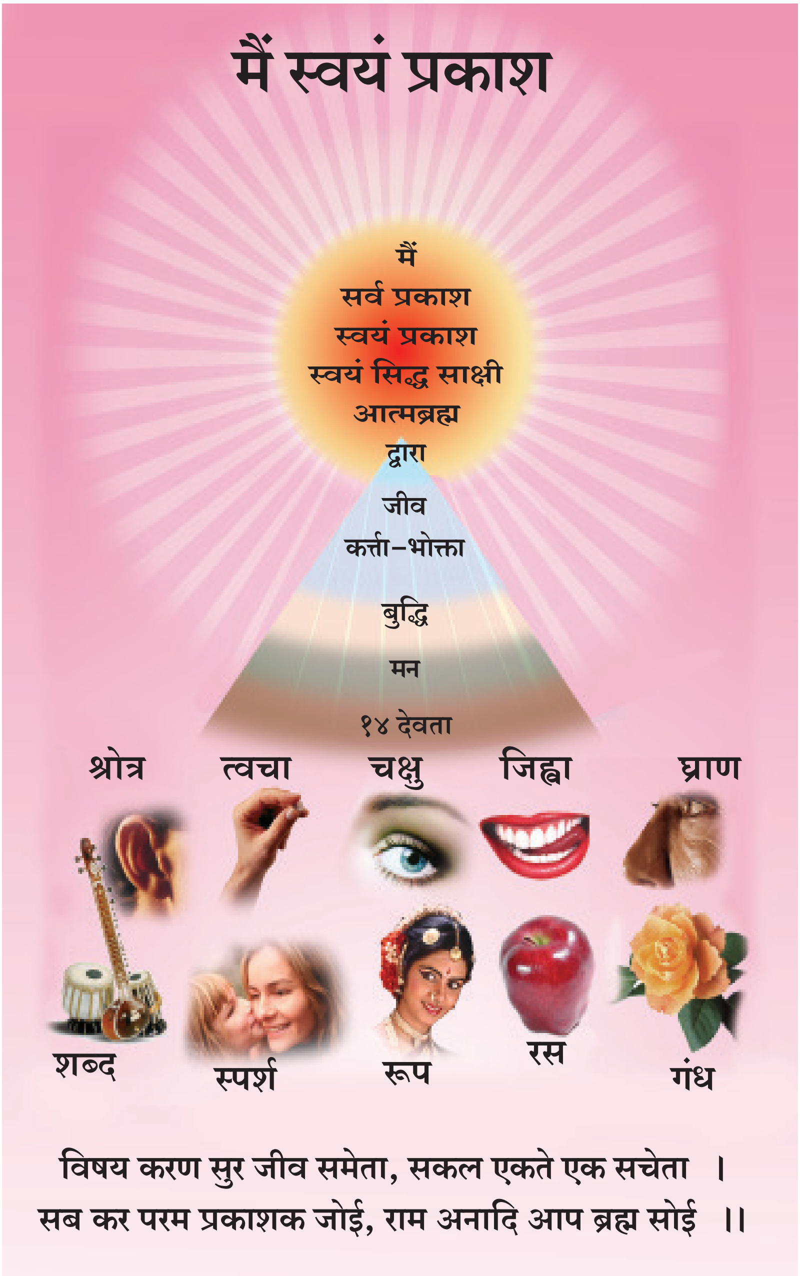
मैं उपरोक्त चौदह त्रिपुटियों के भावाभाव का प्रकाशक असंग, अखण्ड, एकरस, साक्षी, आत्मा हूँ ।

चौदह त्रिपुटियों

	अध्यात्म	अधिदेव	अधिभूत
अन्तःकरण चतुष्टय	मन	चन्द्रमा	संकल्प-विकल्प
	बुद्धि	ब्रह्मा	निश्चय करना
	चित्त	विष्णु	चिन्तन करना
	अहंकार	शंकर (रुद्र)	अभिमान
पंच ज्ञानेन्द्रिय	श्रोत्र	दिशा	शब्द
	त्वचा	वायु	स्पर्श
	चक्षु	सूर्य	रूप
	जिह्वा	वरुण	रस
	घ्राण	अश्वनी कुमार	गंन्ध
पंच कर्मेन्द्रिय	वाक्	अग्नि	कहना,बचन
	पाणि	इन्द्र	ग्रहण-त्याग
	पाद	वामन	चलना
	लिंग	प्रजापति	मूत्र, मैथुन
	गुदा	यमराज	मलत्याग

यह त्रिपुटियां पटुता, मन्दता तथा अन्धता स्वभाव वाली है।

मैं उपरोक्त चौदह त्रिपुटियों के भावाभाव का प्रकाशक असंग, अखण्ड, एकरस, साक्षी, आत्मा हूँ ।


मैं स्वयं प्रकाश
मैं
सर्व प्रकाश
स्वयं प्रकाश
स्वयं सिद्ध साक्षी
आत्मब्रह्म
द्वारा
जीव
कर्त्ता–भोक्ता
बुद्धि
मन
१४ देवता
श्रोत्र
त्वचा
चक्षु
जिह्वा
घ्राण
शब्द
स्पर्श
रूप
रस
गंध
विषय करण सुर जीव समेता, सकल एकते एक सचेता ।
सब कर परम प्रकाशक जोई, राम अनादि आप ब्रह्म सोई ।।

मैं साक्षी आत्मा



(1) कर्ता–भोक्ता
(2) पुण्य–पाप
(3) स्वर्ग–नरक
(4) सुख–दुःख
(5) अशान्त–शान्त
(6) अज्ञान–ज्ञान
(7) बन्ध–मोक्ष

उपरोक्त सातों धर्म न शरीर के है न मुझ साक्षी आत्मा के । इन सूक्ष्म शरीर के धर्मों से मैं पूर्ण असंग है । मन ही कर्मों का कर्ता एवं चौरासी लाख योनियों को धारण करता हुआ उन कर्मों के फलों का भोक्ता है । मानव जीवन में आकर सद्गुरु से स्वरूप ज्ञान, सोऽहम् जानकर संसार बन्धन से मुक्त होता है ।

'सदा में समत्वं न मुक्ति न बन्धः , चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोहम्'